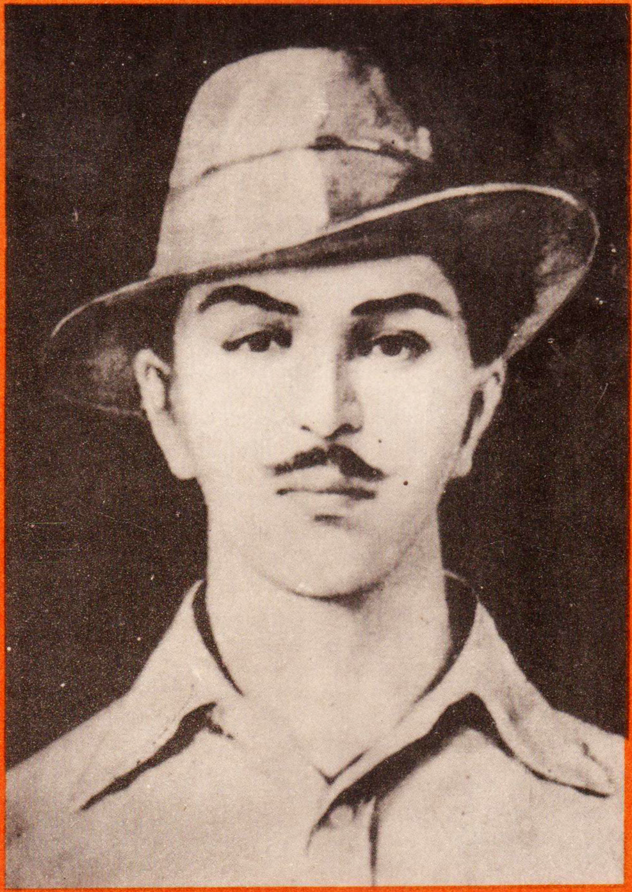
अमर शहीद भगत सिंह



प्रकाशन विभाग



सरदार भगतसिंह

भारतीय क्रान्ति के अग्रदूत

अमर शहीद भगतसिंह

वीरेन्द्र सिंधु

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

प्रथम संस्करण : चैत्र 1896 (अप्रैल 1974)
पुनर्मुद्रण : श्रावण 1905 (अगस्त 1983)
द्वितीय संस्करण : आश्विन 1911 (अक्तूबर 1989)

मूल्य : 13.50

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई-400038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069
- एल.एल.ए. आडीटोरियम, 736 अन्नासलै, मद्रास-600002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004
- निकट गवर्नमैंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम-695001
- 10 बी., स्टेशन रोड, लखनऊ-226019
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500004

अशोका ऑफसेट वर्क्स, ओल्ड रोहतक रोड, दिल्ली-35 द्वारा मुद्रित।

अनुक्रम

जन्म और शैशव	1
शिक्षा	4
लाहौर से कानपुर	12
दशहरा बम काण्ड और उसके बाद	16
साइमन वापस जाओ	20
लाहौर से कलकत्ता	23
असेम्बली में बम का धमाका	26
अदालत में	30
भूख हड़ताल	35
स्पेशल मजिस्ट्रेट की अदालत में	38
न्याय का नाटक	42
काल कोठरी या अध्ययन कक्ष	46
एक सन्देश एक वसीयत	48
अन्तिम मुलाकात और उसके बाद	51
फांसी के तख्ते पर	55

प्राक्कथन

दो शताब्दी पूर्व पश्चिम से कुछ अंग्रेज, व्यापारियों के रूप में भारत आए और धीरे-धीरे उन्होंने तराज़ू छोड़कर तलवार थाम ली। उस तलवार ने हजारों-लाखों भारतवासियों का खून पीया और वे व्यापारी अतिथि इस देश के मालिक बन बैठे। हमारे देश के धर्म और संस्कृति पर उन्होंने वार किया। देश की तमाम पूंजी लूट ली और जनता को कंगाल बना दिया। राजनीतिक जोड़-तोड़ से देश के टुकड़े-टुकड़े कर डाले और जिस किसी ने भी इन सब अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाई, उस पर कोड़े बरसाए गए, फांसी पर लटका दिया गया या फिर जीवन भर तिल-तिल गलने के लिए कालेपानी की गन्दी जेलों में डाल दिया गया।

कुछ ही वर्षों में भारत की संतप्त आत्मा में विद्रोह की आग सुलगने लगी। 1857 में अंग्रेजी शासन के अधीन सेना के भारतीय सिपाहियों ने कुछ कर दिखाने की ठानी। हिन्दू और मुसलमान इतिहास की नित्य बदलती प्रक्रियाओं के साथ घुलमिल गए थे। उनके बीच एक दीवार खड़ी करने का ही यह परिणाम था कि आग भभकने लगी। उन्नीसवीं सदी में भारतीय सिपाहियों को बंदूकों में इस्तेमाल करने के लिए जो कारतूस दिए जाते थे उनमें गाय और सूअर की चर्बी लगी होती थी। कारतूस को बंदूक में भरने से पूर्व उन्हें अपने दांतों से काटना पड़ता था। बात मामूली लगती है, पर समय को देखते हुए बहुत बड़ी थी। सबसे बड़ी बात यह थी कि भारतीय सिपाहियों की आत्मा ने ही उन्हें झकझोरा—"आखिर हम एक विदेशी सरकार के लिए यह सब क्यों करें, क्यों सहें, क्यों अपनी आत्मा का हनन करें।"

आग भभक उठी। भावनाएं उग्र थीं, अतः सैनिक विद्रोह की निर्धारित तिथि की भी चिन्ता न कर मंगल पांडे ने एक अंग्रेज अफसर की हत्या करके इस क्रान्ति का उद्घाटन कर दिया।

इसी अवधि में रानी झांसी, तांत्या टोपे और अनेक ऐसे वीरों के बलिदानों से इतिहास के पन्ने रंग गए, परन्तु भावना उग्र होते हुए भी विद्रोह योजना के अनुकूल एक समय पर पूरी शक्ति से न हो सका। अतः विद्रोह कुचल दिया गया। गुलामी की जंजीरें और अधिक कस दी गईं।

1873 में वासुदेव बलवन्त फड़के ने युवा समाज के संगठन का काम आरम्भ किया तो सोई क्रान्ति एक बार फिर उठने लगी। समय की मांग यह थी कि निराश जनता को उत्साहित कर नया जीवन दिया जाए। इसके लिए योजनापूर्वक शक्ति का संचय आवश्यक था। फड़के द्वारा व्यायाम शालाएं आरम्भ की गईं जिनका मुख्य ध्येय यही था कि नवयुवकों का मन एवं शरीर पुष्ट किया जाए और देश की स्वतन्त्रता के लिए बलिदान देने के लिए उन्हें तैयार किया जाए। बलवन्त फड़के को तो उनकी क्रान्तिकारी गतिविधियों के फलस्वरूप राजद्रोह का आरोप लगाकर आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया, परन्तु उनकी जलाई जोत से युवकों को सचमुच एक दिशा अवश्य मिल गई।

उधर बाल गंगाधर तिलक ने "स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" का उद्घोष किया। कांग्रेस एक संगठन के रूप में पनप चुकी थी। उसके मंच को भी स्वतंत्रता के लक्ष्य की पूर्ति का मंच बना दिया गया। बाद में तिलक, सुभाषचंद्र बोस, गांधी, नेहरू, पटेल, मौलाना आजाद और ऐसे ही अनेक नेताओं की गतिविधियां तेजी पकड़ने लगीं। जन-चेतना और देश भर में स्वतंत्रता प्राप्त करने की इच्छा जोर पकड़ने लगी। समय के साथ-साथ विचारों में भी परिवर्तन आए और कांग्रेस में नरम और गरम दो दल बने। सुभाष बाबू जहां देश में सशस्त्र क्रांति के पोषक थे, तो गांधी अहिंसा से स्वतंत्रता प्राप्त करने के ढंग को सर्वोत्तम मानते थे। प्रश्न यह नहीं कि कौन-सा ढंग उचित था, कौन सा नहीं। महत्व इस बात का है कि लक्ष्य एक था और उसकी पूर्ति के साधन दोनों ही अपने-अपने स्थान पर उपयुक्त थे। सुखद बात तो यह थी कि जनता पूरे मन से तैयार हो चुकी थी। एक तरफ सुभाष बाबू ने शक्ति से सरकार को ललकारा तो दूसरी तरफ गांधीजी ने अहिंसात्मक सत्याग्रह से अंग्रेजी शासन को पस्त कर दिया। क्रांतिकारी संगठनों की छिटपुट गतिविधियों ने जनता की भावनाओं को मजबूत करने के साथ-साथ सरकार को जमकर विरोध को दबाने का अवसर न प्रदान करने और उसकी शक्ति तथा ध्यान को बटाने का काम बखूबी किया। क्रांतिकारियों का विश्वास था कि स्वतंत्रता 'भीख' नहीं जो मांग कर ली जाए। स्वतंत्रता हमारा अधिकार है और अपने अधिकार को प्राप्त करने के लिए शक्ति का परिचय देना भी आवश्यक हो जाता है। इन सभी अलग-अलग प्रयासों का गम्भीरता से अध्ययन किया जाय तो इस परिणाम पर पहुंचा जा सकता है कि अहिंसा और क्रांति के दोनों मार्गों ने ही तेज कैंची के दो फलकों का काम किया जिनके बीच विदेशी शासन को काट कर रख दिया गया।

ये क्रांतिकारी सगठन क्या थे, उनका लक्ष्य क्या था, उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कौन से तरीके अपनाए गए और उन्हें कहां तक सफलता मिली, इन सब प्रश्नों का उत्तर शहीद भगतसिंह के जीवन की झांकी से बखूबी मिल जाता है।

भगतसिंह 23 वर्ष की छोटी सी उम्र में ही युगपुरुष बन गए। अपने बलिदान से क्रांति के प्रतीक बनकर देश भर के नवयुवकों को एक दिशा दे गए—इतिहास में एक बेजोड़ उदाहरण प्रस्तुत कर गए। अपने रक्त से स्वतंत्रता के वृक्ष को सींचकर ऐसा मजबूत बना गए कि फिर क्रांति को रोकना अंग्रेज सरकार के बस की बात न रही। भले ही वे स्वयं अपनी आंखों से स्वतंत्र भारत को न देख सके, लेकिन उनका अनुपम बलिदान इतिहास की धरोहर बन गया। आज भी जब हम इन्कलाब **जिन्दाबाद** का नारा सुनते हैं तो भगतसिंह हमारे दिल-दिमाग पर छा जाते हैं।

जन्म और शैशव

पिता की उंगली छोड़ वह खेत में बैठ गया और पौधों की तरह छोटे-छोटे तिनके जमीन में गाड़ने लगा।

"क्या कर रहे हो बेटे" पिता ने पूछा?

"बबूकें बो रहा हूं" बालक ने तुतलाते हुए बड़े भोलेपन से उत्तर दिया।

उम्र अभी केवल ढाई-तीन वर्ष की ही थी। बन्दूक शब्द का उच्चारण करना भी नहीं आता था उसे, बन्दूक से करते क्या हैं यह तो बात ही दूसरी थी। यही बालक बाद में स्वतन्त्रता के अमर सेनानी शहीद भगतसिंह के नाम से जन-जन के मानस पर छा गया।

उस दिन वे अपने पिता सरदार किशनसिंह और उनके एक मित्र के साथ खेत पर गए थे, जहां नया बाग लग रहा था। भगतसिंह ने आम के पौधे रोपे जाते देखे तो वे भी तिनके रोपने लगे, पर जब पिता ने पूछा तो उत्तर मिला, "बबूकें बो रहा हूं"। दोनों ने आश्चर्य से एक दूसरे की ओर देखा और फिर एक बार भगतसिंह को बड़े प्यार से निहारा। कुछ देर बाद भगतसिंह अपनी तिनके वाली 'बबूकें' बोकर उठे और फिर अपने पिता के साथ-साथ चलने लगे।

बालक भगतसिंह बड़ा होकर क्या होने जा रहा है, इसकी घोषणा उसने स्वयं ही कर दी थी। पढ़कर-सुनकर आश्चर्य होता है कि इतने छोटे बालक ने बंदूक की बात सोची कैसे, जबकि बन्दूक कहना भी उसे नहीं आया था। पर शायद भगतसिंह के मुख से बन्दूक शब्द का निकलना कोई अनहोनी बात नहीं थी, क्योंकि यह सब तो उनको रक्त में ही मिला था। सदियों से उनका परिवार अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध था और अब पिछली दो पीढ़ियों से अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध लड़ रहा था। इन सबकी भी एक कहानी है।

भगतसिंह के पूर्वज महाराजा रणजीतसिंह की सेना में थे। पश्चिम में उपद्रवी पठानों तथा पूर्व में बढ़ रहे अत्याचारी अंग्रेजों के बीच पिस रहे सिख राज्य की रक्षा में महत्वपूर्ण योग देने से इस परिवार को मान्यता प्राप्त हो गई थी। अंग्रेजों ने महाराजा रणजीतसिंह और उनके परिवार के साथ जो कुछ व्यवहार किया उस सबने इन पुरखों में जो विद्रोही घृणा जगा दी थी, वह धरोहर के रूप में भगतसिंह को मिली।

भगतसिंह के दादा सरदार अर्जुनसिंह पंजाब के एक गांव खटकड़कलां, जिला जलंधर के निवासी थे। बीसवीं सदी के आरम्भिक वर्षों में जब अंग्रेजी सरकार ने लायलपुर के इलाके में नई नहर खुदवा कर उसे आबाद करने के लिए जलंधर, होशियारपुर आदि के निवासियों को वहां जाकर बसने के लिए जमीनें दीं तो सरदार अर्जुनसिंह भी बंगा गांव जिला लायलपुर में जा बसे। वे प्रथम सिख नागरिक थे जो आर्य समाज की सामाजिक क्रान्ति में शामिल हुए। अपने इलाके के के प्रसिद्ध हकीम थे और गरीबों का इलाज मुफ्त करते थे। देशभक्ति उनमें कूट-कूट कर भरी थी।

अपने तीनों बेटों को जिस तरह उन्होंने देश के स्वतन्त्रता संघर्ष में झोंका, वह उसी की भूमिका थी। आर्य समाज के बड़े-बड़े जलसों में वे भाषण देने जाते जहां वे छुआछूत, जाति-पांति जैसी बुराइयों को दूर करने का प्रचार करते।

सरदार अर्जुनसिंह के तीन बेटे थे—सरदार किशनसिंह, सरदार अजीतसिंह और सरदार स्वर्णसिंह।

सरदार किशनसिंह का व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली था। अपने समय में उठने वाले हर आन्दोलन में उन्होंने पूरे जोश के साथ भाग लिया। देश में जब कहीं, जहां कहीं अकाल पड़ा, बाढ़ आई, वे वहीं सहायता कार्यों के लिए जा पहुंचते। लाहौर में उन्होंने एक अनाथालय की स्थापना की, जिसमें बालकों के पालन-पोषण और शिक्षा का पूरा प्रबन्ध किया गया था। उन्होंने देखा कि देश में कोई न कोई मुसीबत आई ही रहती है, कहीं बाढ़, तो कभी अकाल और अंग्रेजी सरकार कोई मदद नहीं करती। इसलिए यह आवश्यक है कि हम स्वतन्त्रता प्राप्त करें। लोकमान्य तिलक ने उन्हीं दिनों "स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" नारा दिया था। उनके व्यक्तित्व से सरदार किशनसिंह बहुत प्रभावित हुए और कांग्रेस में दिलचस्पी लेने लगे। बाद में भारत माता सोसायटी नामक संस्था की स्थापना लाहौर में की गई। अखबार निकाल कर अंग्रेजों के विरुद्ध प्रचार आरम्भ किया गया। सरकार की निगाह सरदार किशनसिंह पर थी। जब वह शस्त्रास्त्रों की सहायता लेने के लिए नेपाल गए तो वहां उनका जोरदार स्वागत हुआ और उन्हें शाही मेहमान के रूप में ठहराया गया। मगर सरकार चौकन्नी हो ही चुकी थी और नेपाल से वापस लौटते हुए उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। इस प्रकार वह जीवन में कई बार जेल गए, उन पर अनेक मुकदमे चले। जेल में भी वे मानवीय अधिकारों के लिए संघर्ष करते रहे। क्रान्तिकारियों द्वारा जो कुछ किया जाता रहा, उसमें भी वह पूरी तरह परामर्श-सहयोग देते रहे।

दूसरे भाई सरदार अजीतसिंह ने भारत माता सोसायटी की स्थापना की। इसी के माध्यम से समाचारपत्रों तथा बहुत सारे क्रान्तिकारी साहित्य का प्रकाशन हुआ। पंजाब में उठने वाले किसान आन्दोलन की गूंज, जो 'पगड़ी संभाल जट्टा' के नाम से प्रसिद्ध है, नगर-नगर, गांव-गांव इसी संस्था के माध्यम से पहुंची। सरदार अजीतसिंह के भाषणों में इतना जोश होता था कि हजारों की संख्या में जनता घंटों बैठी उन्हें सुना करती। वे अंग्रेजों द्वारा किए अत्याचारों की कहानी इस तरह कहते कि लोग आंसुओं से भीग जाते। सरदार अजीतसिंह की योजना थी कि सेना और राजाओं को साथ लेकर जनक्रान्ति हो। इसके लिए उन्होंने राजाओं से मिलना और सेना में भाषण देना आरम्भ कर दिया था। तेजी से फैलते उनके प्रभाव को देखकर अंग्रेज सरकार घबरा उठी और उसने इन्हें मांडले (बर्मा) के किले में नजरबन्द कर दिया। छः महीने सरदार अजीतसिंह को मांडले में रखा गया। 18 नवम्बर, 1907 को स्पेशल ट्रेन से वे लाहौर पहुंचे। जनता में जोश का तूफान आ गया। पंजाब में उनके स्वागत में खुशियां मनाई गईं। दिसम्बर 1907 में कांग्रेस का अधिवेशन सूरत में हो रहा था। लोकमान्य तिलक के विशेष निमन्त्रण पर वे और उनके बड़े भाई सरदार किशनसिंह एक साथ सूरत गए। लोकमान्य तिलक, सरदार अजीतसिंह से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने सभा में कहा, "सरदार अजीतसिंह एक विलक्षण

व्यक्ति हैं। वे इस लायक हैं कि उन्हें स्वतंत्र भारत का प्रथम राष्ट्रपति बनाया जाए। हमारे पास उन जैसा कोई दूसरा आदमी नहीं है।" तिलक महाराज ने केवल यह कहा ही नहीं बल्कि एक ताज भी अपने हाथों से सरदार अजीतसिंह के सिर पर रखा।

मांडले से लौटने के बाद सरदार अजीतसिंह ने अपने आन्दोलन कार्य को और भी तेजी से प्रारम्भ कर दिया। भारत माता सोसायटी के माध्यम से तेजी से क्रान्तिकारी साहित्य का प्रकाशन होने लगा। वे अपने भाषणों, पेशवा अखबार में लिखे लेखों और पुस्तकों द्वारा एक तरफ जनता को खुले आम संगठित कर रहे थे तो दूसरी ओर गुप्त रूप से क्रान्ति दल का संगठन भी बढ़ा रहे थे। गुप्तचर विभाग ने बहुत गर्म रिपोर्ट सरकार को भेजी। सरकार ने उन पर ऐसा केस तैयार किया कि उन्हें फांसी पर लटकाया जा सके। इसकी खबर सरदार अजीतसिंह को मिल गई और वे 1909 में भारत छोड़ कर विदेश चले गए। 39 वर्ष तक विदेशों में रहकर वे क्रान्ति की ज्वाला जलाते रहे। अन्ततः मार्च 1947 में स्वदेश लौटे और 15 अगस्त, 1947 को (स्वतंत्रता प्राप्ति के दिन) यह कहकर कि "मेरा कार्य पूर्ण हो गया, अब मैं चलता हूं" वे स्वर्ग सिधारे।

तीसरे भाई सरदार स्वर्णसिंह भारत माता सोसायटी के प्रमुख कार्यकर्ताओं में से थे। सोसायटी द्वारा प्रकाशित क्रान्तिकारी साहित्य को घर-घर पहुंचाना उनका मुख्य कार्य था। सरदार अजीतसिंह मांडले में निर्वासित कर दिए गए थे और सरदार किशनसिंह फरार होकर नेपाल जा पहुंचे थे। सरदार स्वर्णसिंह ने सरदार अजीतसिंह के देश से निकाले जाने पर गरमागरम लेख लिखे और गुप्त रूप से जनता में बांटे। इससे जनता में जोश आया, जुलूस निकले, जलसे हुए, जिनका नेतृत्व सरदार स्वर्णसिंह करते थे। अतः उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया, मुकदमा चला और दो साल की सख्त सजा मिली। उन दिनों जेलों में बड़ी कड़ी सजाएं दी जाती थीं, जैसे रहट चलाना (बैलों के स्थान पर व्यक्ति), मूंज कूटना इत्यादि। इसके साथ ही साथ खुराक बेहद गंदी जो आदमी के खाने लायक भी न हो। इस सबके फलस्वरूप सरदार स्वर्णसिंह का स्वास्थ्य खराब हो गया। उन्हें क्षय रोग हो गया और वे तेईस वर्ष की भरी जवानी में ही शहीद हो गए।

जिस परिवार की दो-दो पीढ़ियां स्वतंत्रता के लिए रक्त बहा चुकी थीं, जो टूट गए पर झुके न हों, गुलामी की जंजीरों को तोड़ फेंकने का संकल्प जिनकी हर सांस में भरा था, ऐसे परिवार में जन्म लेकर यदि भगतसिंह ढाई वर्ष की उम्र में ही बन्दूकें बोने लगे तो क्या आश्चर्य ?

उस परिवार में जहां सरदार किशनसिंह, सरदार अजीतसिंह और सरदार स्वर्णसिंह पहले से ही क्रान्तियज्ञ की वेदी सजाए बैठे थे, भगतसिंह का जन्म शनिवार 28 सितम्बर, 1907 प्रातः 9 बजे के लगभग बंगा गांव, जिला लायलपुर में हुआ। उन दिनों भगतसिंह के पिता सरदार किशनसिंह और चाचा सरदार स्वर्णसिंह जेल में थे। संयोगवश वे दोनों उसी दिन जेल से रिहा हुए। चारों ओर से बधाई की आवाजें गूंज उठीं। जो भी आया उसी ने बालक की दादी श्रीमती जयकौर से कहा, "मांजी आपका पोता बड़ा भाग्यवान है, इसके आने के साथ-साथ आपके बेटे भी घर आए हैं।"

यों बच्चे तो सभी सुन्दर होते हैं, पर भगतसिंह के चेहरे पर तो आरम्भ से ही एक विशेष आकर्षण था। उनकी सुन्दरता को देखकर सभी मोहित होकर उन्हें गोद में लेने को उत्सुक रहते।

शिक्षा

भगतसिंह की शिक्षा बंगा गांव के प्राइमरी स्कूल में आरम्भ हुई। उनके बड़े भाई जगतसिंह पहले से ही वहां शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। अब दोनों भाई साथ-साथ स्कूल जाते। इन दोनों का रहन-सहन, बातचीत करने का ढंग अन्य बालकों से इतना भिन्न था कि सभी का ध्यान उनकी ओर आकर्षित होता। उन दिनों ये दोनों अपने दादा सरदार अर्जुनसिंह के संरक्षण में पल रहे थे। उनके उंच्च विचारों का प्रभाव जगतसिंह और भगतसिंह पर साफ झलकता था। गांव भर में यह बात प्रसिद्ध थी कि बच्चों का पालन-पोषण तो कोई बाबा अर्जुनसिंह से सीखे। भगतसिंह अपना पाठ याद करने, सुन्दर लिखावट और खेलों में भाग लेने के कारण सभी विद्यार्थियों में श्रेष्ठ माने जाते थे। अध्यापकों के प्रति आदर का व्यवहार तथा सहपाठियों के साथ सहानुभूति के कारण वे छोटे-बड़ों सभी में लोकप्रिय हो गए। किन्हीं दो लड़कों में लड़ाई हो जाती तो वे बीच-बचाव करते। स्कूल के सभी लड़के उनसे प्यार करते और बड़ी कक्षाओं के विद्यार्थी कभी-कभी उनको कंधों पर बैठाकर घर छोड़ जाते।

बचपन से ही भगतसिंह मित्र बनाने में बहुत कुशल थे। स्कूल के सभी बड़े-छोटे बालक तो उनके मित्र थे ही पर वे बड़ों-बड़ों से भी मित्रता जोड़ते। इस मित्रता की भी एक निराली ही अदा थी। एक दिन गांव का बूढ़ा दर्जी उनकी कमीज सिलकर लाया, तो बोले : "दर्जी मेरा दोस्त है, देखो मेरे लिए कमीज लाया है।" उनकी सुन्दरता और भोली चंचलता के कारण सभी उनसे प्यार करते थे। कोई उन्हें कुछ चीज दे देता तो घर आकर बताते : "वह मेरा दोस्त है, देखो यह चीज उसने दी है।" एक दिन कई बार ऐसा कहने पर कि "यह मेरा दोस्त है, वह मेरा दोस्त है" घर में ही किसी ने कहा "यह और वह क्या, तुम्हारा तो सारा गांव ही दोस्त है।" तब वह छाती पर हाथ मारकर एक बड़े समझदार आदमी की तरह बोले : "हां, सारे मेरे दोस्त हैं।" एक छोटे से बालक के मुख से इस प्रकार की बात सुनकर सभी हंस दिए।

तीसरी कक्षा में पहुंचते-पहुंचते भगतसिंह उस क्रान्ति को थोड़ा-थोड़ा समझने लगे, जिसके कारण उनके चाचा सरदार अजीतसिंह विदेशों में भटक रहे थे और अपने देश नहीं लौट सकते थे और दूसरे चाचा सरदार स्वर्णसिंह जेल में कैदियों पर होनेवाले अत्याचारों के कारण बीमार होकर शहीद हो गए थे। उनके पिता का जेल आना-जाना लगा ही रहता था। चाचियों के दुखी होने पर भगतसिंह उनके पास बैठ जाते और उनकी ओर इस तरह देखते जैसे उनके दुख को ठीक-ठीक अनुभव कर रहे हों। वे दोनों चाचियों को धीरज देते और बड़ी चाची श्रीमती हरनामकौर से कहते : "चाची जी आप दुखी न हों। मैं अंग्रेजों को देश से बाहर निकालकर, चाचा जी को वापस लाकर ही दम लूंगा।" दूसरी चाची श्रीमती हुक्मकौर से कहते : "मैं अंग्रेजों से बदला लूंगा।" वे यह सब पूरे जोश के साथ कहते और तब उनके चेहरे पर ऐसा भाव होता

जैसे वह बालक न होकर एक सेनापति हों। उनकी बात सुनते-सुनते चाचियां अपना दुख भूलकर उन्हें अपनी गोद में समेट लेतीं और उनके चेहरों पर संतोष की एक रेखा उभर आती।

चौथी कक्षा में पहुंचने पर वे सहपाठियों से पूछा करते: "तुम बड़े होकर क्या करोगे?" कोई कहता नौकरी करूंगा, कोई खेती की बात करता, कोई दुकानदारी की। वे सबकी बात सुनते रहते, पर जब कोई कहता "मैं शादी करूंगा" तो वे झट जोश में आकर कहते: "शादी करना भी कोई बड़ा काम है, मैं शादी बिलकुल नहीं करूंगा, मैं तो अंग्रेजों को देश से बाहर निकालूंगा"।

भगतसिंह को पढ़ने में इतनी रुचि थी कि चौथी कक्षा की पढ़ाई के साथ-साथ उन्होंने घर में रखी सरदार अजीतसिंह, सूफी अम्बाप्रसाद और लाला हरदयाल की लिखी पचास से अधिक छोटी-बड़ी पुस्तकें और पुराने अखबारों की फाइलें जिनमें सरदार अजीतसिंह और लाला लाजपतराय के निर्वासन तथा दूसरे राजनैतिक मुकदमों के समाचार थे, सब पढ़ डाले। इस अध्ययन से भगतसिंह की बुद्धि का बहुत विकास हुआ। उम्र के हिसाब से वे अभी बालक थे, पर बातचीत, विचार और चाल-ढाल से वे अपनी उम्र से बहुत बड़े लगते थे। इतने बड़े कि उनके अध्यापक उनका आदर करते और दूसरे विद्यार्थियों को वैसा बनने की प्रेरणा देते। पढ़ाई-लिखाई, सफाई, अनुशासन, सहयोग, इन सबके लिए अध्यापकों को उनसे कुछ कहने की भी आवश्यकता नहीं पड़ी। अपने इन्हीं गुणों के कारण वे स्कूल में ही नहीं, गांव भर में प्रसिद्ध हो गए।

> जन्म से सिख होते हुए भी भगतसिंह के दादा सरदार अर्जुनसिंह आर्य समाजी सिद्धांतों में विश्वास रखते थे। अतः जगतसिंह और भगतसिंह का यज्ञोपवीत संस्कार करवाया गया और उस दिन सरदार अर्जुनसिंह ने अपने दोनों पोतों को अपनी दोनों भुजाओं में लेकर संकल्प किया कि "मैं इस यज्ञवेदी पर खड़े होकर अपने दोनों वंशधरों को देश की बलिवेदी के लिए अर्पित करता हूं।"
>
> यद्यपि सरदार अर्जुनसिंह के तीनों बेटे भारत माता की स्वतंत्रता के लिए जूझ रहे थे; फिर भी उनके कदम पीछे नहीं हटे। उन्होंने नई पीढ़ी में जन्मे दो नन्हें सेनानी देश की बलिवेदी के लिए तैयार कर दिए।
>
> जगतसिंह की मृत्यु ग्यारह वर्ष की अल्पायु में ही हो गई थी।

भगतसिंह के पिता सरदार किशनसिंह ने लाहौर के पास कुछ जमीन खरीद ली थी। वहां कुछ काम-धंधा आरम्भ कर लेने के बाद वे अधिकतर लाहौर में रहते थे। गांव में प्राइमरी स्कूल के पास होने पर भगतसिंह अपने माता-पिता के पास नवांकोट, लाहौर, चले गए जहां उन्हें डी० ए० वी० स्कूल में पांचवीं कक्षा में दाखिल करा दिया गया। गांव और शहर के स्कूल की पढ़ाई तथा वातावरण के अन्तर को ध्यान में रखते हुए उनके पिता ने भगतसिंह के लिए ट्यूशन का प्रबन्ध कर दिया।

कुछ दिनों के बाद जब उनके पिता ने अध्यापक से पूछा: "आपका शिष्य कैसा चल रहा है?" अध्यापक का उत्तर था: "वह शिष्य क्या स्वयं गुरु है। मैं उसे क्या पढ़ाऊं? वह तो लगता है पहले ही सब कुछ पढ़ चुका है।"

अध्यापक के ऐसा कहने का कारण यह था कि स्कूल की पुस्तकें पढ़ने के साथ-साथ बाहर की जो पुस्तकें एवं समाचारपत्र उन्हें मिल जाते उन्हें भी वे याद कर डालते थे। राष्ट्रीय समस्याओं पर उनका ज्ञान अपनी कक्षा और उम्र दोनों से बहुत आगे था। यह 1917 की बात है जब प्रथम विश्वयुद्ध चल रहा था। गदर पार्टी ने भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध गदर करने की योजना फरवरी 1915 में बनाई थी, जोकि अनेक कारणों से असफल हो गई। उसके नेता गिरफ्तार कर लिए गए थे और उन पर मुकदमा चलाकर उन्हें फांसी, काले पानी आदि की सजाएं दी जा चुकी थी। यद्यपि मुकदमे की खबरें कांट-छांट कर ही अखबारों में छपती थीं, फिर भी युद्ध की खबरों के बाद जनता के लिए सबसे उत्तेजनापूर्ण खबरें वे ही होती थीं। भगतसिंह उन खबरों को बहुत ध्यान से पढ़ते और उनको बहुत जोश आता।

बचपन में सरदार अजीतसिंह, सूफी अम्बाप्रसाद और लाला हरदयाल द्वारा लिखी पुस्तकों को पढ़कर भगतसिंह के मन पर अंग्रेजों के प्रति जो विद्रोह की भावना उमड़ी थी वह इन खबरों से और भी जोर पकड़ गई। उनके मन पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा। वे इसके बारे में अक्सर अपने पिता से चर्चा करते।

22 जुलाई, 1918 को भगतसिंह ने अपने दादा सरदार अर्जुनसिंह को यह पत्र उर्दू में लिखा :

ओम्

श्रीमान् पूज्य बाबा जी, नमस्ते,

अर्ज यह है कि खत आपका मिला। पढ़कर दिल को खुशी हासिल हुई। इम्तिहान की बाबत यह है कि मैंने पहले इस वास्ते नहीं लिखा था कि हमें बताया नहीं गया था। अब हमें अंग्रेजी और संस्कृत का बताया है। उसमें मैं पास हूं। संस्कृत में मेरे 150 में से 110 नम्बर हैं, अंग्रेजी में 150 में से 68 नम्बर हैं। जो 150 नम्बरों में से 50 ले जाए, वह पास होता है। नम्बर 68 लेकर अच्छा पास हो गया हूं। किसी किस्म की फिक्र न करें। बाकी नहीं बताया। 8 अगस्त को पहली छुट्टी होगी। आप कब आएंगे, तहरीर फरमाएं।

आपका ताबेदार,
भगतसिंह

संस्कृत में भगतसिंह को 150 में से 110 नम्बर मिले, जबकि अंग्रेजी में 68 ही। उन्होंने सोचा कि इसका दादाजी के मन पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है, इसलिए बताया कि पास होने के लिए तो 50 नम्बर ही काफी थे, मैं 68 नम्बर पाकर अच्छा पास हो गया हूं।

डी० ए० वी० स्कूल में प्रतिदिन प्रातःकाल हवन होता था। आंखें मूंदकर प्रार्थना होती थी। भगतसिंह इस हवन-प्रार्थना से कभी प्रभावित नहीं हुए। उनके अन्दर कोई दूसरी बहुत तीव्र जिज्ञासा थी। लगता था वे कुछ खोज रहे हैं, कुछ पाने को बेचैन हैं। उनकी बुद्धि कहती थी, जो तुम चाहते हो, वह यह नहीं है।

स्कूल के रास्ते में एक बहुत बूढ़ा व्यक्ति बड़े से थाल में मिठाई बेचा करता था। उसके हाथ कॉपते थे, फिर भी जैसे-तैसे अपना काम चलाता था। जाड़े के मौसम में एक दिन भगतसिंह और उनके मित्र जयदेव गुप्त उधर से निकले। बूढ़े को देखकर भगतसिंह ठहर गए, ठंड के मारे

उसका बुरा हाल था। तराजू उससे संभल न रही थी। भगतसिंह बहुत देर तक तरस भरी निगाह से उसे देखते रहे, फिर आगे बढ़कर पूछा : "तुम्हारा कोई नहीं है बाबा ?" "नहीं," बूढ़े ने उत्तर दिया। जयदेव बोले, "यह सब इसके कर्मों का फल है।" भगतसिंह ने पूरे जोर से कहा : "यह सब बहकावे की बात है। इस बूढ़े को रोटी और सहारा समाज से मिलना चाहिए, पर यह काम आंख मूंदकर मोक्ष की प्रार्थना करने से नहीं हो सकता।" दस-ग्यारह वर्ष की उम्र में ही भगतसिंह का चिन्तन इतना गहरा हो चुका था कि धर्म जैसे गहन विषय की भी वह आलोचना कर सके। उन्होंने यह महसूस कर लिया था कि पूजा-प्रार्थना से समाज सुधार नहीं हो सकता।

1919 में जब महात्मा गांधी ने भारत की राजनीति में सीधे प्रवेश कर असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया उस समय भगतसिंह सातवीं कक्षा के विद्यार्थी थे। गांधीजी के भाषणों में सरकारी अदालतों और नौकरियों के बहिष्कार के साथ-साथ स्कूल छोड़ देने की बात भी कही जाती थी। भगतसिंह ने इस आन्दोलन का स्पर्श अनुभव किया।

13 अप्रैल, 1919 (वैसाखी के दिन) अमृतसर के जलियांवाला बाग में एक सार्वजनिक सभा की घोषणा हुई। यह स्थान चारों ओर मकानों से घिरा हुआ है और भीतर जाने के लिए केवल एक ही मार्ग है। उस दिन उस सभा में कोई बीस हजार से भी अधिक स्त्री-पुरुष, बच्चे एकत्र हुए थे कि अचानक पंजाब के लेफ्टीनेंट गवर्नर सर ओ डायर ने वहां प्रवेश किया। उसके साथ सौ सशस्त्र हिन्दुस्तानी सिपाही थे और पचास अंग्रेज। एक व्यक्ति भाषण दे रहा था और लोग शान्त बैठे थे। जनरल ने गोली चलाने का हुक्म दिया। गोलियां हिन्दुस्तानी फौजियों से चलवाई गईं और अंग्रेज उनके पीछे रहे। गोलियां तब तक चलीं जब तक कारतूस खत्म नहीं हो गए। 1600 राउन्ड फायर किए गए। भागने या बचने को कहीं जगह न थी फिर भी असहाय लोग इधर-उधर भागे और बहुत से कुएं में कूद पड़े। जलियांवाला बाग लाशों से भर गया। रात भर लाशें वहीं पड़ी रहीं और घायल भी। किसी ने उनके मुंह में पानी तक न डाला।

जब यह घटना घटी तब भगतसिंह बारह साल के थे। दूसरे दिन वे समय पर स्कूल तो गए, पर समय पर लौटे नहीं। चारों ओर वातावरण में अशान्ति फैली हुई थी। घर में सबको चिन्ता हुई कि वह क्यों नहीं आए। उस दिन वे स्कूल गए ही नहीं। सुबह घर से निकले, बस में बैठे और जा पहुंचे अमृतसर। जलियांवाला बाग पहुंचकर निर्दोष-निहत्थी जनता के खून से लथपथ मिट्टी उठाई, माथे से लगाई और थोड़ी-सी एक शीशी में भरकर लौटे। सोचकर विस्मय होता है कि जब अमृतसर में भय की आंधी चल रही थी, फौजी लोग गोलियों की बौछार कर रहे थे, कब, कौन गोली का निशाना बन जाए, कुछ ठीक न था, उस समय भगतसिंह कैसे जलियांवाला बाग पहुंचे होंगे और कैसे वहां से मिट्टी उठाने का साहस किया होगा।

देर से घर पहुंचे तो छोटी बहन अमरकौर ने उछलते-कूदते उनके पास आकर पूछा : "वीरजी, आज इतनी देर क्यों कर दी ? मैंने आपके हिस्से के फल रखे हैं, चलकर खा लो।" भगतसिंह उदास थे, कुछ बोले नहीं। घबराकर बहन ने पूछा : "क्यों क्या बात है, ठीक तो हो न ?" गम्भीरता से भगतसिंह ने कहा : "खाने की बात मुझसे मत करो, आओ तुम्हें एक चीज दिखाऊं।" खून में रंगी मिट्टी की वह शीशी दिखाकर बोले : "अंग्रेजों ने हमारे बेहद आदमी मार दिए हैं।" सारी बातें बहन को बताने के बाद वे फूल तोड़कर लाए और शीशी के चारों ओर

रखकर श्रद्धा से सिर झुका दिया। फूल चढ़ाने का यह क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा।

1921 में जब भगतसिंह नवीं कक्षा में थे, असहयोग आन्दोलन तेजी पकड़ रहा था। भगतसिंह ने मन ही मन निश्चय किया कि उन्हें स्कूल छोड़ कर आन्दोलन में शामिल होना है। इस निर्णय की सूचना पिताजी को देना आवश्यक था, पर तब तक वे बहुत शर्मीले थे। इस बात को स्वयं पिता से कहने में झिझक हुई। उन्होंने अपने साथी जयदेव गुप्त से कहा : "तुम कह दो पिताजी से।" सौभाग्य से उन्हें अपने इस निश्चय में पिता का पूरा समर्थन मिला। भगतसिंह ने स्कूल छोड़ दिया और 14 वर्ष की उम्र में आन्दोलन में कूद पड़े। स्वदेशी का प्रचार और विदेशी का बहिष्कार इस आन्दोलन के कार्यक्रम में शामिल थे। किसान परिवार में जन्म लेने के कारण भगतसिंह के घर में कताई-बुनाई का काम पहले से ही होता था। घर के सब लोग खद्दर पहनते थे। इसलिए स्वदेशी में उनके लिए कोई विशेष आकर्षण न था, हां विदेशी वस्त्रों की होली जलाने में उन्हें विशेष आनन्द आता। इस कार्य में वे पूरी रुचि लेते। वे अपनी ही उम्र के लड़कों की टोली बनाकर घर-घर से विदेशी वस्त्र मांग कर लाते, उनका धूमधाम से जुलूस निकालते और किसी चौराहे पर उन वस्त्रों की होली जलाते।

होली की इन लपटों ने ही विद्रोह की ओर बढ़ते उनके पहले कदम देखे। उनकी संगठनशक्ति, तेजस्विता और व्यवहार-पटुता के पहले अनुभव उनके साथियों को हुए। जो परिवार दूसरी टोलियों को एक भी विदेशी वस्त्र देने से साफ इन्कार कर देते थे, वे भगतसिंह को कई-कई वस्त्र देते थे। जो लोग दूसरों की बातों से चिढ़ जाते थे, गुस्सा करते थें वे भगतसिंह की बातों से प्रसन्न हो जाते थे। प्रभावशाली बातचीत की यह प्रतिभा उनमें बचपन से ही थी। टोली के जुलूस के नारों में उनकी ही आवाज सबसे ऊपर सुनाई देती। उनके व्यक्तित्व की छाप लोगों के हृदय पर पड़ने लगी।

आन्दोलन पूरी तेजी से चल रहा था और भगतसिंह भी पूरी तेजी से अपने काम में जुटे हुए थे कि एक धड़ाका हुआ। 5 फरवरी, 1922 को गोरखपुर जिले के चौरीचौरा स्थान पर कांग्रेस का एक जुलूस निकल रहा था। भीड़ ने पुलिस के इक्कीस सिपाहियों और एक थानेदार को खदेड़ कर थाने में बन्द कर दिया और थाने की इमारत को आग लगा दी। वे सब जलकर मर गए। इसी प्रकार की एक-दो घटनाएं और भी हुईं। इस घटना के कारण गांधीजी ने आन्दोलन स्थगित कर दिया। देश भर में गांधीजी के इस निर्णय का विरोध हुआ। विरोध की यह स्वाभाविक प्रतिक्रिया भगतसिंह के मन में भी एक तूफान बनकर उतरी। इस बात ने उनके मन को परेशान कर दिया कि इतने बड़े देश के आन्दोलन में दो-चार जगह बेकाबू भीड़ का उपद्रव कर बैठना इतनी बड़ी बात कैसे हो सकती है कि पूरे देश का आन्दोलन ही स्थगित कर दिया जाए। इस चिन्तन से उनके मन में हिंसा और अहिंसा को लेकर विवाद खड़ा हो गया और उनके अन्तःकरण में एक बहुत खूबसूरत चेहरा चमक उठा। यह था 19 वर्षीय सरदार करतारसिंह सराबा का, जो अंग्रेजों के खिलाफ सशस्त्र गदर की तैयारी में पकड़े गए और हंसते-हंसते शहीद हो गए। भगतसिंह को करतारसिंह के प्रति अपार श्रद्धा थी। वे उन्हें बेहद प्यार करते थे और जिस तरह हंसते-हंसते वे फांसी के तख्ते पर झूल गए थे, उस पर भगतसिंह न्योछावर थे।

भगतसिंह ने अपने मन से पूछा—क्या करतारसिंह और उनके साथियों का कार्य अनुचित है? और यदि करतारसिंह का कार्य अनुचित है तो क्या सरदार अजीतसिंह, सूफी अम्बाप्रसाद, वीर सावरकर और श्री रासबिहारी बोस का हमारे देश के इतिहास में कोई स्थान नहीं है? उनके मन ने इस पर "न" कहा और वे गांधीजी तथा उनकी अहिंसा से दूर जा खड़े हुए।

15 वर्षीय भगतसिंह के मन में एक के बाद एक तूफान उठे और अन्ततः उन्हें अपना मार्ग दिखाई दिया। उन्होंने समझा कि अहिंसा का मार्ग देश को उसके लक्ष्य आजादी तक नहीं पहुंचा सकता। अतः आजादी पाने के लिए बहुत से बलिदान देने होंगे। उनके सामने फिर एक बार घूम गया करतारसिंह सराबा का चेहरा। जब उन्हें जजों ने फांसी की सज़ा सुनाई तो—"आपका धन्यवाद" कहकर वे इस तरह मुस्कुराए कि मौत भी उस मुस्कुराहट पर शरमा गई।

नेशनल कालेज (लाहौर) की स्थापना पंजाब के कांग्रेस नेताओं ने की जिनमें लाला लाजपतराय प्रमुख थे। इस कालेज में अधिकतर वे ही विद्यार्थी भर्ती हुए जिन्होंने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया था। अतः यह स्वाभाविक ही था कि इन विद्यार्थियों के मन राजनैतिक उत्तेजना और राष्ट्रीय चेतना से पूर्ण थे। इस कालेज में ऐसे अध्यापक रखे गए थे, जिनका उद्देश्य विद्यार्थियों को परीक्षा पास कराना या नौकरी के लिए तैयार करना नहीं था बल्कि देश के नेतृत्व के लिए तैयार करना था।

इस कालेज का पाठ्य-क्रम भी अन्य कालेजों के पाठ्यक्रमों से भिन्न था। यहां भारतीय इतिहास की जानकारी के साथ ही साथ विश्व इतिहास की जानकारी भी दी जाती थी और इसमें भी मात्र बादशाहों के बारे में नहीं अपितु फ्रांस, इटली और रूस की राज्य क्रान्तियों का इतिहास भी पढ़ाया जाता था। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जो प्रयत्न हुए, उनकी पूरी जानकारी दी जाती थी और संसार के जो दूसरे देश अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे थे उनके आन्दोलनों का परिचय भी दिया जाता था।

अध्यापक वर्ग

आचार्य श्री जुगलकिशोर विलायत से अपनी शिक्षा समाप्त कर तब आए ही थे। स्वतंत्र देश में जो मानसिक उन्मुक्तता उन्होंने देखी थी, उसका प्रभाव उन पर बहुत गहरा था। उन्होंने नेशनल कालेज के वातावरण को बहुत सहज बना दिया। भाई परमानन्द जो कि राजनैतिक विद्रोह के अपराध में काले पानी की सज़ा भोगकर आए थे, नेशनल कालेज के प्राध्यापक बने। उनके जीवन के साथ विद्रोह की कहानी जुड़ी हुई थी। वे विद्यार्थियों के लिए विद्रोह की जीती-जागती मशाल थे। वे पढ़ाते-पढ़ाते अन्दमान की काल कोठरियों की आप-बीती सुनाने लगते। विद्यार्थी इतने ध्यान से उनके कष्टों की कहानी सुनते कि उन्हें स्वयं को उन कष्टों की अनुभूति होने लगती। तीसरे प्रोफेसर थे श्री जयचन्द्र विद्यालंकार, जो कालेज के वातावरण में राजनैतिक ज्योति जगाए रखते थे। इसी प्रकार और भी बहुत से श्रेष्ठ प्रोफेसर थे। इसी नेशनल कालेज में भगतसिंह भरती हो गए। भगतसिंह मैट्रिक पास नहीं थे। नवीं क्लास में उन्होंने असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के लिए स्कूल छोड़ दिया था। इस स्थिति में उन्हें कालेज के प्रथम वर्ष में कैसे दाखिल कर लिया गया? भाई परमानन्द ने उनके ज्ञान की जांच की। अंग्रेजी में भगतसिंह कमजोर थे, परन्तु क्योंकि उन्हें स्कूल की पुस्तकों के अतिरिक्त ऐतिहासिक और राजनैतिक पुस्तकें

पढ़ने का बेहद शौक था इसलिए इन विषयों में भगतसिंह का ज्ञान और सूझ-बूझ अपनी कक्षा से बहुत आगे थी। भाई जी उनके व्यक्तित्व, बातचीत, बुद्धिमत्ता और आदर्शवादी दृष्टिकोण से बहुत प्रभावित हुए। भाई जी ने उन्हें दो महीने का समय विशेष तैयारी के लिए दिया और कालेज में ले लिया। परिश्रम करना भगतसिंह का स्वभाव था इसलिए जल्दी ही वे अपने साथियों के साथ हो गए और पढ़ाई का काम ठीक चल पड़ा।

1915-16 की गदर योजना के असफल हो जाने के बाद पंजाब में सशस्त्र प्रयत्नों की कड़ी टूट गई थी और सिर्फ जयचन्द्र विद्यालंकार ही एक ऐसे आदमी थे जिनका सम्पर्क बंगाल के क्रान्तिकारियों से था। जिन विद्यार्थियों में राजनैतिक बेचैनी अधिक होती थी वे जयचन्द्र जी के निकट आ जाते थे। भगतसिंह का व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली था, विचार बहुत तेजस्वी थे। वे थोड़े ही दिनों में उनके बहुत निकट हो गए। इस निकटता ने भगतसिंह के अध्ययन को नियमबद्ध कर दिया और उन्होंने क्रमबद्ध अध्ययन आरम्भ कर दिया जिससे उनका ज्ञान विकसित और गहरा होने लगा।

द्वारकादास पुस्तकालय

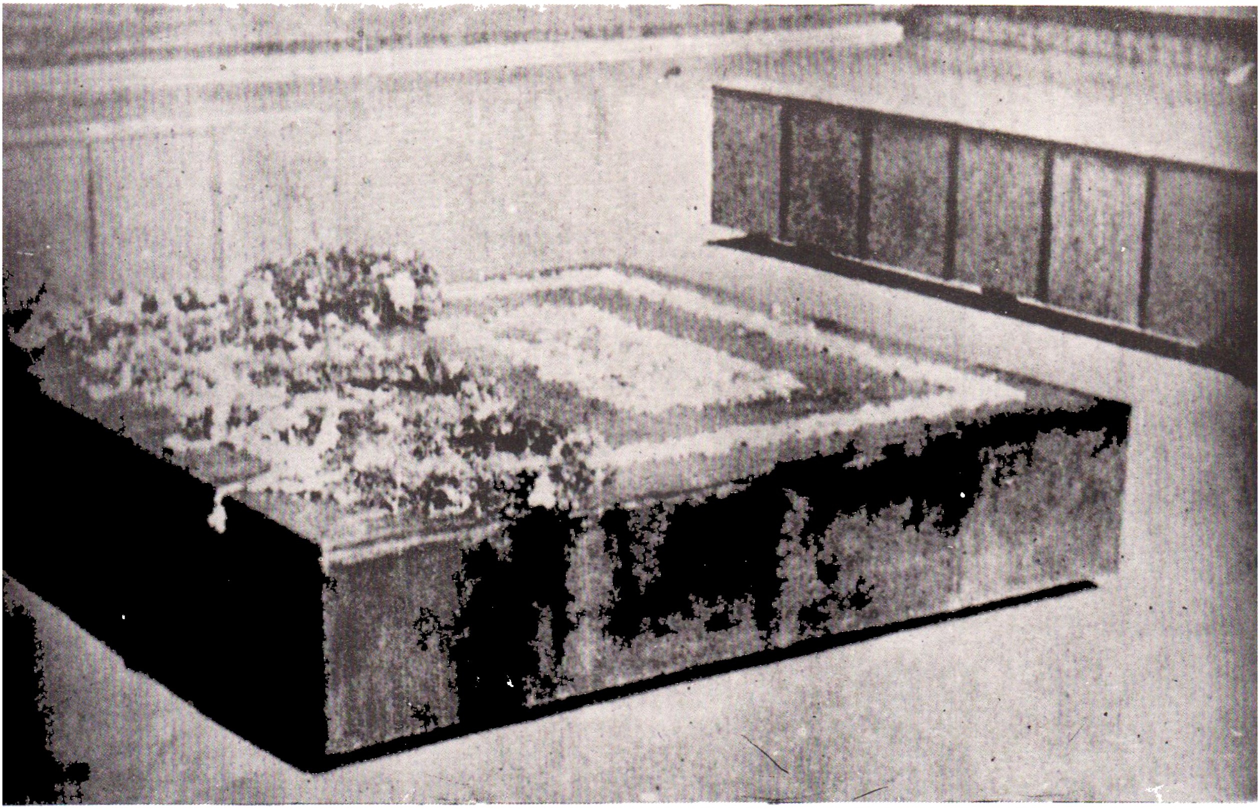
नेशनल कालेज के साथ ही लाला लाजपतराय ने द्वारकादास पुस्तकालय की भी स्थापना की थी। श्री राजाराम शास्त्री उन दिनों उस पुस्तकालय के अध्यक्ष थे। भगतसिंह अपने स्वभाव के कारण उनके अच्छे मित्र बन गए थे। वे उनसे पुस्तकें तो लाते ही थे, उनकी खाने-पीने की चीजें भी छीन लेते थे। क्योंकि पुस्तकालय युवकों का केन्द्र था, वहां खूब राजनैतिक बहसें भी होती थी, इसलिए सी० आई० डी० की निगाह पुस्तकालय पर रहती थी। इस बहस में भगतसिंह आतंकवाद और समाजवाद दोनों का समर्थन करते थे। रूस में कुछ क्रान्तिकारी अपनी जान न्योछावर करके अपने सिद्धांतों के प्रचार में विश्वास रखते थे। इसे 'आत्मबलिदान द्वारा प्रचार' कहा जाता था। भगतसिंह को ऐसे क्रान्तिकारियों ने सबसे अधिक प्रभावित किया था जो आत्मबलिदान करके अपने सिद्धांतों का प्रचार दुश्मन की अदालत में खड़े होकर किया करते थे।

श्री राजाराम शास्त्री ने लिखा है—"एक दिन मैंने एक अराजकतावादी पुस्तक पढ़ी। सम्भवतः उसका नाम था 'अराजकतावादी और अन्य निबन्ध'। इसमें एक अध्याय था 'हिंसा का मनोविज्ञान'। इसमें फ्रांस के अराजकतावादी नवयुवक वेलां का वह बयान दिया गया था, जो उसने गिरफ्तार होने पर अदालत के सामने दिया था। उसमें उसने बताया था कि कैसे पहले उसने ट्रेड यूनियनों को संगठित किया, सार्वजनिक सभाओं में व्याख्यान दिए और शान्तिमय प्रदर्शन किए, पर शोषण पर कायम इस पूंजीवादी समाज के कर्णधारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। 'तब मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि क्यों न फ्रांस की असेम्बली में बम का धमाका किया जाए, जिससे बहरे शासक जग जाएं। बहरों को सुनाने के लिए ऊंची आवाज की आवश्यकता होती है, यही सोचकर मैंने असेम्बली में बम फेंका था। मेरा उद्देश्य बिलकुल स्पष्ट था—सोते हुए शासकों को खूनी क्रान्ति से सावधान कर देना। अब मजिस्ट्रेट मुझे जो भी सजा दें, मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूंगा'।"

श्री राजाराम शास्त्री आगे लिखते हैं, "वेलां का बयान काफी लम्बा और जोशीला था। उसे पढ़कर मैं बहुत प्रभावित हुआ। कितने ही नवयुवकों को मैंने उसे पढ़ने को दिया, पर जब



अमर शहीद भगतसिंह की माता श्रीमती विद्यावती जी जिन्हें जनवरी, 1973 को पंजाब सरकार ने 'पंजाब माता' के रूप में सम्मानित किया



फिरोजपुर में बनी शहीद भगतसिंह, राजगुरु एवं शहीद सुखदेव की समाधि,
जहां इन तीनों बलिदानियों का अंतिम संस्कार किया गया था।

भगतसिंह ने उसे पढ़ा तो वे मारे खुशी के उछल पड़े। उस पुस्तक को उन्होंने कई बार पुस्तकालय से अपने नाम पर लिया। वेलां के'बयान को उन्होंने याद कर डाला। कापी पर नोट कर लिया, मुझ से रोज आकर पूछते कि किस नवयुवक ने इसे पढ़ा है और उस पर इसका क्या प्रभाव पड़ा है।''

निश्चय ही वेलां के उदाहरण ने उनके मन में यह संकल्प जगाया कि आगे चलकर मैं भी ऐसा ही करूंगा और जब सचमुच उन्होंने ऐसा किया तो वे वेलां को भूले नहीं और बम फेंकने के बाद असेम्बली में फेंके परचे में उन्होंने वेलां को सबसे पहले स्मरण किया था।

उन्हीं दिनों जब गम्भीर राजनैतिक अध्ययन और प्रोफेसर जयचन्द्र विद्यालंकार के सम्पर्क से उनके मन में एक आतंकवादी चरित्र विकसित हो रहा था, एक दिन जयचन्द्र जी के मकान पर ही विख्यात क्रान्तिकारी श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल से उनकी मुलाकात हुई। इस परिचय और बातचीत के बाद भगतसिंह क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो गए। क्रान्तिकारी दल के सदस्य होते हुए भी वह कालेज के परिश्रमी विद्यार्थी बने रहे। इन्हीं दिनों उनमें अभिनय कला का भी खूब विकास हुआ। नेशनल कालेज में एक नेशनल नाटक क्लब की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य था नाटकों के द्वारा जनता में गुलामी की पीड़ा और आजादी की बेचैनी पैदा करना। इस क्लब द्वारा दिखाए गए नाटकों में 'भारत दुर्दशा', 'राणा प्रताप' और 'सम्राट चन्द्रगुप्त' में भगतसिंह अपनी भूमिकाओं में पूरी तरह सफल रहे। भगतसिंह का पगड़ी वाला चित्र इन्हीं दिनों का है।

विवाह की तैयारी

1923 में भगतसिंह एफ० ए० की परीक्षा पास कर बी० ए० के प्रथम वर्ष में दाखिल हुए। घर में विवाह की चर्चा होने लगी। भगतसिंह की दादी ने उनसे विवाह के लिए आग्रह किया तो घर के बाकी सभी सदस्यों ने अपना उत्साह प्रकट किया। एक दिन उसी इलाके के एक बड़े जमींदार अपनी बहन के लिए भगतसिंह को देखने आए। भगतसिंह को उन्होंने बहुत पसन्द किया और वे सगाई की तारीख तय कर गए। सगाई की इस बातचीत से जैसे भगतसिंह का मार्ग खुल गया। तैयारी पहले से थी ही। अब घर में रहने का मतलब था विवाह के जुए के नीचे आना। वह यह सब कैसे स्वीकार करते? सगाई की निश्चित तिथि से कुछ दिन पूर्व वे घर से लाहौर गए और फिर वापस नहीं लौटे। उनके पिता की मेज की दराज में रखा यह पत्र मिला:

पूज्य पिता जी, नमस्ते,

मेरी जिन्दगी मक्सदे आला यानी आजादी-ए-हिन्द के असूल के लिए वक्फ हो चुकी है। इसलिए मेरी जिन्दगी में आराम और दुनियाबी ख्वाहिशात बायसे कशिश नहीं हैं।

आपको याद होगा कि जब मैं छोटा था तो बापूजी ने मेरे यज्ञोपवीत के वक्त ऐलान किया था कि मुझे खिदमते-वक्त के लिए वक्फ कर दिया गया है। लिहाजा मैं उस वक्त की गई प्रतिज्ञा पूरी कर रहा हूं। उम्मीद है आप मुझे माफ फरमाएंगे।

आपका ताबेदार
भगतसिंह

लाहौर से कानपुर

भगतसिंह अपने पिता के नाम जो पत्र छोड़ गए थे, उसमें साफ लिखा था कि वे देश सेवा के लिए समर्पित हैं और उसी काम से आगे बढ़ रहे हैं। वे लाहौर से चले और सीधे कानपुर पहुंचे। श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल ने लिखा है कि उनके कहने पर भगतसिंह जी घर छोड़कर कानपुर चले गए। पहले पहल कानपुर में मन्नीलाल जी अवस्थी के मकान पर उनके रहने का इन्तजाम किया गया।

कानपुर क्षेत्र का काम उन दिनों श्री योगेशचन्द्र चटर्जी देख रहे थे। भगतसिंह ने उनके साथ काम करना आरम्भ किया। बटुकेश्वर दत्त, अजय घोष और विजयकुमार सिन्हा जैसे क्रान्तिकारियों से उनका परिचय वहीं हुआ। पहले कुछ दिन तो अखबार बेचकर भगतसिंह ने अपने खाने-पीने का काम चलाया, बाद में श्री गणेश शंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' अखबार के सम्पादन विभाग में 'बलवन्तसिंह' के नाम से काम करने लगे। चारों ओर पुलिस सतर्क हो गई थी क्योंकि कानपुर में होने वाली क्रान्तिकारी गतिविधियों का कुछ आभास उसे मिल गया था। अतः भगतसिंह को विद्यार्थी जी ने शादीपुर गांव (जिला अलीगढ़) के नेशनल स्कूल में हैडमास्टर बनवा दिया।

भगतसिंह के घर के लोग उनके वापस न लौटने से बेहद परेशान थे। किसी को कोई खबर न थी कि वे कहां गए। इसी बीच उनकी दादी सख्त बीमार हो गई। बीमारी की हालत में उनकी एकमात्र तड़पन यही थी कि भगतसिंह को बुला दो—वह कहां है? सरदार किशनसिंह ने 'वन्देमातरम्' अखबार में विज्ञापन छपवाया कि "भगतसिंह जहां भी हों लौट आएं, उनकी दादी सख्त बीमार है।" वह विज्ञापन विद्यार्थी जी ने भी देखा, पर उन्हें क्या मालूम था कि बलवन्तसिंह ही भगतसिंह हैं।

उन्हीं दिनों भगतसिंह ने अपने मित्र रामचन्द्र को पत्र लिखा। उसमें अपना पता भी दिया, पर साथ ही इस बात का जिक्र किसी से न करने को भी लिखा। रामचन्द्र ने पत्र आने की बात जयदेव गुप्त से कही परन्तु पता नहीं बताया। सबने बहुत आग्रह किया तो बोले : "पता तो मैं नहीं बता सकता, हां साथ चल सकता हूं।" रामचन्द्र और जयदेव गुप्त जब कानपुर विद्यार्थी जी के पास पहुंचे तो उन्हें उनसे बातचीत करने पर यह पता चला कि बलवन्तसिंह ही भगतसिंह हैं। भगतसिंह दूर से अपने दोनों मित्रों को आते देख कहीं जा छिपे और उनसे मिले नहीं। लौटकर दोनों ने सारी बात सरदार किशनसिंह को बताई तो उन्होंने विद्यार्थी जी के नाम एक पत्र भेजा, जिसमें भगतसिंह को वापस भेजने का आग्रह किया, साथ ही भगतसिंह के नाम एक पत्र भेजा जिसमें दादी जी की बीमारी की सूचना दी। साथ ही यह भी लिखा कि वे निश्चिन्त हो कर लौट आएं, विवाह की कोई बात नहीं की जाएगी।

विद्यार्थी जी के आग्रह से और पिता के पत्र में दिए इस आश्वासन से कि अब विवाह के लिए आग्रह नहीं होगा तथा दादी की बीमारी की खबर से उनका मन पिघल गया और भगतसिंह कोई छः माह बाद घर लौटे। उन्हें घर में देख सभी बहुत प्रसन्न हुए। भगतसिंह दादी की सेवा में जुट गए। कभी उन्हें दवा पिलाते, तो कभी खूब हंसाते। कुछ ही दिनों में वे स्वस्थ हो गई। वास्तव में उनका रोग यही था कि उनके लाड़ले भगतसिंह उनकी आंखों से दूर थे। वे आ गए, रोग दूर हो गया।

जबरदस्त संगठनकर्ता

इन्हीं दिनों एक घटना ने सिद्ध कर दिया कि भगतसिंह कितने जबरदस्त संगठनकर्ता हैं। उन दिनों गुरुद्वारों पर से रूढ़िवादी महन्तों का प्रभाव हटाकर गुरुद्वारों की देखभाल की जिम्मेदारी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटियों को देने के लिए अकाली आन्दोलन चल रहा था। ननकाना साहब के गोलीकांड और लाठी चार्ज से हुए शहीदों को श्रद्धांजलि देने के लिए शोक दिवस मनाया गया। भुजा पर काली-पट्टी बांधकर नाभा के महाराजा ने भी जब शोक मनाया तो वाइसराय उनसे सख्त नाराज़ हुए और उन्हें गद्दी से उतार कर देहरादून में नजरबन्द कर दिया। इस पर मोर्चा ननकाना साहब से हटकर जैतों (नाभा) में जम गया। सरकारी आदेशानुसार इन जत्थों को पानी तक पिलाने की मनाही थी।

जैतों जाने वाला एक जत्था भगतसिंह के गांव बंगा से गुजरने वाला था। सरकार और उसके भक्त इन जत्थों को महत्वहीन सिद्ध करने में लगे थे, पर राष्ट्रभक्त इनका धूमधाम से स्वागत करते थे। जत्थेदार सरदार करतारसिंह और सरदार ज्वालासिंह लाहौर जाकर सरदार किशनसिंह से मिले और कहा कि आप बंगा में जत्थे का स्वागत करने के लिए आएं। उनका बम्बई जाना पहले से ही निश्चित था फिर भी उन्होंने स्वागत की जिम्मेदारी ली और व्यवस्था के लिए भगतसिंह को गांव भेज दिया। गांव के लोग जत्थे का स्वागत करना चाहते थे, परन्तु सरदार बहादुर दिलबागसिंह, आनरेरी मजिस्ट्रेट, यह ऐलान कर चुके थे कि जत्थे वालों को खाने-पीने के लिए कुछ नहीं दिया जाएगा, यहां तक कि कुओं पर से डोल उठा लिए जाएं ताकि जत्थे वाले खुद खीचकर भी पानी न पी सकें।

निश्चित तारीख पर जत्था आया और गांव के बाहर ठहरा तो जत्थे के स्वागत में भगतसिंह ने जोरदार भाषण दिया, जिसमें शहीदों और क्रान्तिकारियों की साफ शब्दों में प्रशंसा की गई थी। आतिशबाजी भी छोड़ी गई। भगतसिंह की यह हिम्मत देखकर गांव वालों पर छाया आतंक दूर हुआ और उन्होंने रातों-रात मनों दूध, टोकरों में रोटियां और घड़ों दाल-सब्जियां तैयार करके भगतसिंह के घर पहुंचा दीं । दिन निकलने से पहले ही भगतसिंह अपनी उम्र के कुछ लड़कों के साथ सारा सामान सिर पर उठा कर जत्थे वालों के पास पहुंचा आए। यही नहीं, दूसरे गांवों के लोग भी खाने-पीने का सामान लाते और गन्ने के खेतों में निश्चित जगह पर रख जाते और जत्थे के लोग उठा लेते। जत्था एक दिन के बजाए तीन दिन ठहरा और तीनों दिन खाने-पीने का सामान बराबर पहुंचता रहा। गांव भर में खूब धूम-धाम रही। जब जत्था चला तो जत्थे वाले गा रहे थे :

"लाज रख ली भगतसिंह प्यारे ने, लाज रख ली।"

उपरोक्त घटना से सरदार बहादुर दिलबागसिंह की शान चूर-चूर हो गई। उनके मन में बहुत गुस्सा था। कहते हैं कि उन्होंने सरकार पर जोर डाला कि भगतसिंह को जेल में बन्द किया जाए। वारंट लेकर पुलिस दरवाजे पर आई तो वे पीछे की खिड़की से बाहर कूद गए और हाथ नहीं आए।

भगतसिंह लाहौर से दिल्ली पहुंचे और 'दैनिक अर्जुन' के सम्पादन विभाग में काम करने लगे। कुछ दिनों बाद फिर जब कानपुर पहुंचे, तो गंगा में बाढ़ आई हुई थी। वे लोगों को बचाने और बसाने में जुट गए। अन्य अनेक क्रान्तिकारी साथी भी वहीं थे। पार्टी को रुपये की सख्त जरूरत थी और डाका डालने के सिवा और कोई साधन भी नहीं था। कई छोटी-बड़ी डकैतियां डाली गई जिसमें कुछ में भगतसिंह ने भी भाग लिया, परन्तु डाका डालना उनको कदापि पसन्द नही था। सफलतापूर्वक काम करके लौटने के बाद भी वे बहुत देर तक परेशान रहते। एक तो उन्हें अपने ही लोगों को लूटना अच्छा न लगता, उनका मन इसके प्रति विरोध करता। दूसरे वे सोचते कि हमें तो जनता को साथ लेकर इस क्रान्ति को जनक्रान्ति बनाना है। पर इस तरह तो हम जनता से और दूर होते हैं। लोगों के मन में हमारे प्रति नफरत के भाव पैदा होते हैं।

नौजवान भारत सभा

भगतसिंह कानपुर से लाहौर लौटे और पूरी शक्ति से "नौजवान भारत सभा" की स्थापना में जुट गए। इस काम में उनके प्रमुख साथी थे श्री भगवती चरण। भगतसिंह का विचार था कि जनता को अपने साथ लिए बिना सशस्त्र क्रान्ति के लिए किए गए प्रयत्न सफल नहीं हो सकते इसलिए क्रान्तिकारी दल और जनता के बीच जो खाई है उसे भरना होगा। सभी क्रान्तिकारी साथियों का सहयोग इस संस्था को मिला और शीघ्र ही "नौजवान भारत सभा" की शाखाएं दूर-दूर तक फैल गईं। सभा ने भारतीय स्वतंत्रता के लिए बलिदान होने वाले शहीदों के "बलिदान दिवस" मनाने शुरू किए जिससे शीघ्र ही जन-जन तक इस संस्था का नाम पहुंच गया। इस सभा के उद्देश्य थे :

(1) समस्त भारत के मजदूरों और किसानों का एक पूर्ण स्वतन्त्र गणराज्य स्थापित करना।

(2) अखण्ड भारत राष्ट्र के निर्माण के लिए नौजवानों में देशभक्ति की भावना उत्पन्न करना।

(3) ऐसे सभी आन्दोलनों की सहायता करना जो साम्प्रदायिकता विरोधी हों, तथा

(4) किसानों और मजदूरों को संगठित करना।

क्रान्तिकारी दल के लिए जोशीले सदस्यों की खोज भी सभा का एक उद्देश्य था। इसी काम के लिए भगतसिंह ने लाहौर के विद्यार्थियों की एक यूनियन भी संगठित की थी, जो "नौजवान भारत सभा" का ही एक अंग थी। भगतसिंह के इन प्रयंत्नों का उद्देश्य था, जनता में राजनैतिक जागरण पैदा करना और उस जागरण का समय पर उपयोग करने के लिए

क्रान्तिकारी दल को मजबूत बनाना। इस सभा का नारा था "हिन्दुस्तान जिन्दाबाद"।

भगतसिंह अब पूरी तरह क्रान्तिकारी कार्यों में जुट गए थे। उनका सारा समय नई-नई योजनाएं बनाने, उन्हें कार्यान्वित करने, सभाएं करने, जुलूस निकालने में बीतता था। वे आज यहां थे, तो कल वहां। क्रान्तिकारी दल को मजबूत करने के लिए देश भर में घूम रहे थे। मन में बड़े भारी मनसूबे थे, पर कई बार जेब में पैसा एक भी नहीं होता था। दिमाग भारत की स्वतन्त्रता के सुन्दर स्वप्नों से भरा था, पर पेट खाली था। कभी अखबार बेचकर रोटी के पैसे इकट्ठे किए तो कभी चने चबाकर पानी पीकर ही सो रहे। उन्हें अपनी सुध ही कहां थी ? वे तो मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए दीवाने थे।

दशहरा बम काण्ड और उसके बाद

29 जुलाई, 1927 को भगतसिंह अमृतसर स्टेशन पर उतरे। चारों ओर देखने के बाद कि कोई उनका पीछा तो नहीं कर रहा है वे स्टेशन से बाहर निकल गए। कुछ ही आगे बढ़े तो उन्होंने एक पुलिस वाले को अपनी ओर आते देखा। वे तेज चलने लगे तो वह भी तेज चलने लगा। वे दौड़े तो वह उनके पीछे दौड़ा, आगे-आगे भगतसिंह और पीछे वह सिपाही। दौड़ते-बचते एक मकान के बोर्ड पर उनकी निगाह पड़ी। लिखा था 'सरदार शार्दूलसिंह एडवोकेट'। भगतसिंह आंख बचाकर मकान के भीतर चले गए। एडवोकेट साहब मेज पर बैठे फाइलें देख रहे थे। भगतसिंह ने बड़े आराम से सारी बात उनसे कही और जेब से पिस्तौल निकाल कर उनकी मेज पर रख दी। एडवोकेट साहब ने पिस्तौल मेज की दराज में रखी और स्वयं बाहर जाकर टहलने लगे। कुछ ही क्षणों में पुलिस वाला भी वहां आ पहुंचा। सिपाही के पूछने पर एडवोकेट साहब ने उत्तर दिया : "हां आया तो था एक नौजवान दौड़ा-दौड़ा।" एक तरफ इशारा करते हुए बोले : "उधर गया है"। सिपाही उधर ही भागा।

दिन भर भगतसिंह घर के भीतर रहे। रात को पिस्तौल वकील साहब के पास छोड़ छहराटा स्टेशन से रेल में बैठ गए। लाहौर स्टेशन पर उतर कर वे कुछ देर प्लेटफार्म पर खड़े रहे। पिस्तौल उनके पास थी नहीं, अत: वे निश्चिन्त थे। जब कोई उनके पास नहीं आया तो वे स्टेशन से बाहर निकले और तांगे में बैठकर चल दिए। अभी कुछ ही दूर गए थे कि पुलिस ने उन्हें घेर लिया और उनके हाथों में हथकड़ियां डाल दीं। रास्ते में कोई परिचित व्यक्ति मिल गया तो भगतसिंह ने इस बात की सूचना अपने पिता को भिजवा दी।

इस गिरफ्तारी का कारण था 'दशहरा बम-काण्ड'। 1926 में लाहौर में दशहरे के मेले में किसी ने बम फेका था, जिससे दस-बारह आदमी मर गए थे और पचास से अधिक घायल हुए थे। आम जनता क्रान्तिकारियों को बम पार्टी कहती थी और यह बात सभी जानते थे कि क्रान्तिकारी लोग बम और पिस्तौल से अंग्रेजों को डराना चाहते हैं। इसलिए सभी के मन में मेले की घटना के क्रान्तिकारियों के सम्बद्ध होने का ख्याल आया।

कहा तो यह गया था कि भगतसिंह की गिरफ्तारी 'दशहरा बम काण्ड' के सिलसिले में हुई है, परन्तु यह सच नहीं था, क्योंकि बम जनसाधारण में से ही किसी ने फेंका था। वास्तविक कारण यह था कि भगतसिंह को गिरफ्तार करके पुलिस 'काकोरी केस' (क्रान्तिकारियों द्वारा चलती रेलगाड़ी को रोककर सरकारी खजाना लूटने की घटना) के फरारों और दूसरे सम्बन्धित क्रान्तिकारियों की खोज-खबर लेना चाहती थी। पुलिस अफसरों से बातचीत में भगतसिंह 'दशहरा बम काण्ड' को अमानवीय कहकर उसकी निन्दा करते। फिर भी 'काकोरी केस' के फरारों तथा दल की अन्य गतिविधियों को जानने के लिए भगतसिंह को भांति-भांति के कष्ट दिए गए।

भगतसिंह के चरित्र की विशेषता यह थी कि वे दूसरों के कष्टों को तो खूब अनुभव करते परन्तु अपने कष्टों को कभी किसी से न कहते थे। उन्होंने अपनी चाची श्रीमती हरनामकौर को बताया था कि उनके मुंह पर गर्म तारकोल का तोबरा चढ़ा दिया जाता था ताकि दम घुटने से वह भेद बता दें। पर यह सब करके भी पुलिस भगतसिंह से कोई भेद न पा सकी। अफसरों की निरन्तर पूछताछ और दूसरी सजाएं इस तरह एक के बाद एक होती थीं कि अभियुक्त रहस्यों को छिपाए रखने की शक्ति और चेतना ही खो दे और जो वह कहना नहीं चाहता उसे कह दे। भगतसिंह को 15 दिन तक लाहौर के किले में रखा गया, फिर उन्हें बोर्स्टल जेल में भेज दिया गया।

उनके पिता के प्रभाव और कानूनी कार्रवाइयों के कारण पुलिस को मजबूर होकर भगतसिंह को मजिस्ट्रेट के सामने पेश करना पड़ा। वह उनसे कोई भी बात कहलाने में सफल न हो सकी थी, इसलिए कुछ ही सप्ताह बाद भगतसिंह जेल से मुक्त कर दिए गए। मुक्ति का कारण था हाईकोर्ट द्वारा जमानत की स्वीकृति। इस जमानत की चर्चा दूर-दूर तक फैली क्योंकि जमानत की रकम बहुत भारी थी। 60 हजार रुपये आज भी बड़ी रकम है। उस जमाने में तो यह बहुत बड़ी थी। इससे स्पष्ट है कि पुलिस ने उनके बारे में कैसी रिपोर्ट दी होगी। फिर भी हाईकोर्ट के जज ज़मानत मानने को मजबूर थे, क्योंकि पुलिस की रिपोर्ट में भगतसिंह के विरुद्ध संदेह चाहे लाख थे, परन्तु न तो भगतसिंह की स्वीकृति का ही एक शब्द था और न ही ऐसा कोई प्रमाण जो अदालत में टिक सके।

डेरी फार्म

भगतसिंह अब जेल से बाहर थे, परन्तु अभी भी वे पूरी तरह मुक्त न थे। वे इस बात को खूब समझते थे कि जिन्होंने साठ हजार की जमानत दी है उनके प्रति उनका क्या उत्तरदायित्व है। वे ऐसा कोई काम नहीं कर सकते जिससे उनकी जमानत करनेवाले (बैरिस्टर श्री दुनीचन्द और श्री दौलतराम) किसी तरह खतरे में पड़ें। उनके पिता ने लाहौर के पास खासरिया गांव में भगतसिंह के लिए डेरी खोलने की योजना बनाई। भगतसिंह ने इस काम में पूरी दिलचस्पी ली और स्वयं साथ जाकर भैंसें खरीदकर लाए और डेरी का सब काम देखने लगे।

सुबह चार बजे से उठकर भैंसों का दूध निकालते, फिर तांगे में दूध के बर्तन रखकर लाहौर ले जाते, ग्राहकों को देते और हिसाब-किताब रखते। किसी दिन कोई नौकर छुट्टी पर होता तो गोबर तक उठाने में भी जरा न झिझकते। परन्तु इस सबका अर्थ यह नहीं था कि वे अपने जीवन के मुख्य कार्य क्रान्ति को भूल गए थे। क्रान्ति ही उनका जीवन थी और जीवन ही क्रान्ति था। डेरी दिन में डेरी रहती थी, रात में क्रान्तिकारियों की धर्मशाला बन जाती थी। भगतसिंह एक बड़ा भगौना और एक स्टोव खरीद लाए थे। साथियों को गर्म दूध मिलता और योजनाएं भी बनती।

भगतसिंह अभी भी जमानत में जकड़े हुए थे और इसे खत्म करने के लिए प्रयत्न भी कर रहे थे। वे स्वयं ही सरकार को जमानत देने वालों की तरफ से लिखते कि या तो भगतसिंह पर मुकदमा चलाओ या फिर जमानत समाप्त करो। समाचारपत्रों में भी इस सम्बन्ध में चर्चा होती रहती थी। कौंसिल में एक मेम्बर द्वारा सवाल उठाया गया कि यदि सरकार के पास सबूत है तो

वह भगतसिंह के खिलाफ मुकदमा क्यों नहीं चलाती? दो-एक मेम्बरों ने भी ऐसे ही प्रश्नों का नोटिस दिया। अतः सरकार को जमानत समाप्त करनी पड़ी।

जब तक जमानत समाप्त नहीं हुई भगतसिंह ने डेरी के काम के साथ-साथ बहुत से ऐसे लेख लिखे जिनका सम्बन्ध क्रान्तिकारियों से था। वे हिन्दी, उर्दू, पंजाबी तीनों भाषाओं में लिखते थे। अमृतसर से निकलनेवाली '**किर्ती**' नामक पंजाबी पत्रिका में और उर्दू के 'अकाली' में उनके बहुत से लेख छपे। नवम्बर 1928 में 'चांद' पत्रिका का 'फांसी अंक' प्रकाशित हुआ जिसमें 'विप्लव यज्ञ की आहुतियां' के शीर्षक से क्रान्तिकारियों पर बहुत-से लेख भगतसिंह ने लिखे।

भगतसिंह ने बहुत परिश्रम से क्रान्तिकारियों के चरित्रों के साथ-साथ उनके चित्र भी खोज निकाले थे। उन चित्रों की उन्होंने स्लाइडें बनवाईं। नौजवान भारत सभा के मंच पर मैजिक लालटेन के द्वारा समय-समय पर उनका प्रदर्शन होता था और साथ-साथ उन वीरों की कहानी सुनाई जाती थी। काकोरी के शहीदों की स्मृति में काकोरी दिवस मनाया गया। उसी जलसे में मैजिक लालटेन खराब हो गई और बिना रोशनी के तस्वीर आनी बन्द हो गई। किसी को कुछ सूझ नहीं रहा था कि भगतसिंह ने तुरन्त एक मोटी मोमबत्ती जलाई और उसकी लौ को दूसरे हाथ से हवा से बचाते रहे। कभी-कभी हवा का तेज झोंका आता, मोमबत्ती की लपट हाथ को छू जाती, जलन महसूस होती पर तब भी हाथ वहीं का वहीं रहता। अंग्रेजी राज के उस युग में शहीद दिवस मनाना तो दूर की बात थी शहीदों का नाम तक लेने से पुलिस के कोड़ों की मार अथवा जेल में बन्द कर दिए जाने का भय होता था। भगतसिंह ने पहली बार शहीदों की स्मृति में जलसे करने और उनकी वीरगाथा सुनाने का कार्य आरम्भ किया। इससे उनके साहसी व्यक्तित्व की झलक मिलती है।

जमानत खत्म होते ही डेरी के काम से भगतसिंह का मन हट गया। समय पर दूध न पहुंचने से ग्राहक टूटे और धीरे-धीरे डेरी ही खत्म हो गई। भगतसिंह अब अपने जीवन की पूर्णाहुति देने में जुट गए।

हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन

8 और 9 सितम्बर, 1928 को दिल्ली के पुराने किले (तुगलक फोर्ट) में क्रान्तिकारी दल की बैठक हुई, जिसमें पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार और राजपूताना के क्रान्तिकारी आए थे। दल के प्रमुख नेता और 'हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र सेना' के कमांडर इन-चीफ चन्द्रशेखर आज़ाद इस बैठक में नहीं आ सके थे। उन्होंने कहला भेजा था कि जो सब तय करेंगे, मुझे भी स्वीकार होगा। इस प्रकार बैठक में पूरे दल का सर्वोच्च नेतृत्व भगतसिंह के हाथों में ही था। भगतसिंह ने दल की केन्द्रीय समिति का निर्माण करके दल को नया रूप दिया और क्रान्तिकारी संगठन का नाम 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' (हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र संघ) से बदलकर 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन' (हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र संघ) कर दिया जिसका अर्थ था क्रान्ति के उद्देश्य 'समाजवादी समाज' की स्पष्ट घोषणा। इस निर्णय में विजय कुमार सिन्हा, शिववर्मा तथा सुखदेव जैसे कई साथी भगतसिंह के सहायक थे।

इस बैठक में कई साथी विभिन्न प्रान्तों के इंचार्ज नियुक्त किए गए। भगतसिंह और विजयकुमार सिन्हा को प्रान्तों के बीच सम्पर्क स्थापित करने का काम सौंपा गया। इसके लिए भगतसिंह का देश भर में घूमना जरूरी था परन्तु उनका केश और दाड़ी में होना पुलिस की आंखों में सन्देह पैदा कर सकता था। पहली गिरफ्तारी के बाद केशों वाले भगतसिंह को पुलिस खूब अच्छी तरह पहचान भी तो गई थी, इसलिए पार्टी ने फैसला किया कि भगतसिंह बाल कटवा दें। कुछ ही दिनों बाद फिरोजपुर जाकर उन्होंने बाल कटवा दिए।

इसके बाद भगतसिंह बम बनाने के लिए कुछ रासायनिक द्रव्य खरीदने कलकत्ता गए जहां उन्होंने फणीन्द्रनाथ घोष और यतीन्द्रनाथ दास के साथ मिलकर बम में काम आने वाली 'गनकाटन' तैयार की। वास्तव में इसी यात्रा में भगतसिंह का परिचय यतीन्द्रनाथ दास से हुआ था। भगतसिंह को आगरा में ऐसे आदमी की जरूरत थी जो बम बनाना सिखा सके। बाद में यतीन्द्रनाथ दास ने ही आकर बम बनाने की शिक्षा दी। जो बम आगे चलकर असेम्बली में फेंका गया वह आगरा से ही दिल्ली लाया गया था।

साइमन वापस जाओ

वाइसराय ने 8 नवम्बर, 1927 को घोषणा की थी कि भारत में शासन सुधारों के विषय में सुझाव देने के लिए लार्ड साइमन की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त किया जाएगा। 3 फरवरी, 1928 को वह कमीशन बम्बई पहुंचा तो सारे देश में हड़ताल की गई और बम्बई में 'साइमन गो बैक' (साइमन वापस जाओ) के नारों के साथ जोरदार प्रदर्शन हुआ। बम्बई के बाद दिल्ली में काले झंडे दिखाए गए। मद्रास में भी कमीशन के विरुद्ध ज़ोरदार प्रदर्शन हुआ, पुलिस ने गोली चलाई जिससे कुछ प्रदर्शनकारी मारे गए।

क्रान्तिकारी दल इस समय तक संगठित हो चुका था। भगतसिंह कोई न कोई चमत्कार करने को बेचैन थे। दल के अन्य साथी भी उनसे सहमत थे। उन्होंने दल के सामने प्रस्ताव रखा कि साइमन कमीशन पर बम फेंक कर जनता को जागृत किया जाए। दल की केन्द्रीय समिति ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, परन्तु धन के अभाव के कारण साधन न जुट सके।

अक्तूबर 1928 के अन्तिम सप्ताह में साइमन कमीशन लाहौर आ रहा था। स्टेशन पर उतरते ही कमीशन को काले झंडे दिखाने और 'साइमन वापस जाओ' के नारे लगाने की योजना थी। इस प्रदर्शन में सबसे आगे थे 'नौजवान भारत सभा' के सदस्य। भगतसिंह स्वयं लाला लाजपतराय के पास गए और उन्हें जुलूस के आगे-आगे चलने के लिए तैयार कर आए। स्टेशन पर बेहद भीड़ थी। पुलिस सुपरिंटेंडेंट मिस्टर स्काट अपने दूसरे अफसरों के साथ स्वयं स्टेशन पर थे। उन्होंने मौके का निरीक्षण कर यह जान लिया कि जब तक लालाजी और नौजवानों की यह टोली यहां से न हटे साइमन कमीशन के सदस्यों को प्रदर्शनकारियों के जोरदार नारों के शोर से नहीं बचाया जा सकता। अतः मिस्टर स्काट ने असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट मिस्टर साण्डर्स को रास्ता साफ करने और जरूरत पड़े तो लाठी चार्ज करने का काम सौंपा। लाठी चली तो जनता इधर-उधर भाग गई परन्तु लालाजी और नौजवानों की टोली वहीं की वहीं खड़ी रही।

साण्डर्स अब बड़ा डंडा लेकर आगे आए और लालाजी तथा नौजवानों की टोली पर झपटे। लालाजी को छाती और कंधे पर चोटें आई। उसी रोज कांग्रेस की ओर से लाहौर में एक जलसा हुआ जिसमें हजारों की संख्या में लोग इकट्ठे हुए। चोटें लगने के बावजूद लालाजी ने जोरदार भाषण देते हुए कहा : "मैं घोषणा करता हूं कि मुझे जो चोट लगी है वह भारत में अंग्रेजी राज के कफन की कील साबित होगी।" इस घटना के कुछ दिन बाद 17 नवम्बर, 1928 को लालाजी की मृत्यु हो गई।

लालाजी की मृत्यु के कारण से जनता मे अपने स्वर्गीय नेता के प्रति अपार श्रद्धा और अंग्रेजी सरकार के प्रति अपार क्रोध उफन पड़ा। भगतसिंह की दूरदर्शी आंखों ने मौके की अनुकूलता को भांप लिया और दल के सामने प्रस्ताव रखा कि लालाजी पर पड़ी चोटों और

उनकी मृत्यु के रूप में राष्ट्र का जो अपमान हुआ है, उसका बदला लिया जाए। दल की मीटिंग हुई और प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। पुलिस द्वारा लालाजी का अपमान हुआ था। पुलिस सुपरिंटेंडेंट मिस्टर स्काट ने लाठी चलाने का हुक्म दिया था। अतः यह तय हुआ कि उन्हीं को गोली का निशाना बनाया जाए।

साण्डर्स वध

17 दिसम्बर, 1928 को लाला लाजपतराय की मृत्यु के ठीक एक मास बाद, चन्द्रशेखर आज़ाद, भगतसिंह, राजगुरु और जयगोपाल दोपहर बाद पुलिस स्टेशन के सामने पहुंच चुके थे। साइकिल ठीक करने के बहाने पुलिस स्टेशन के ठीक सामने खड़े जयगोपाल ने लाल मोटरसाइकिल देखी जिस पर उनकी समझ में पुलिस सुपरिंटेंडेंट स्काट बैठे थे जबकि वे थे असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट मिस्टर साण्डर्स। दफ्तर से बाहर जरा बच कर खड़े हुए भगतसिंह और राजगुरु को जयगोपाल ने इशारा किया। साण्डर्स अब फाटक पर आ चुके थे। मोटरसाइकिल के हैंडिल घुमाने के लिए ज्यों ही उन्होंने हाथ बढ़ाया कि राजगुरु ने पिस्तौल का घोड़ा दबा दिया। साण्डर्स और मोटरसाइकिल दोनों लुढ़क गए। भगतसिंह ने आगे बढ़कर पिस्तौल से पांच फायर किए। साण्डर्स पूरी तरह घायल हो वहीं जमीन पर गिर पड़ा।

अब भगतसिंह और राजगुरु डी० ए० वी० कालेज की ओर बढ़े जिधर चन्द्रशेखर आज़ाद पहले ही पिस्तौल साधे खड़े थे। गोलियों की आवाज सुनकर पुलिस के कुछ सिपाही भागते हुए आए। भगतसिंह ने पीछे मुड़कर गोली चला दी, सिपाही रुक गए। चन्द्रशेखर आजाद ने भगतसिंह और राजगुरु को भागने का आदेश दिया और स्वयं सिपाहियों का रास्ता रोके खड़े रहे। हेड कांस्टेबल चननसिंह गुस्से में गालियां देता हुआ भागा आ रहा था। आज़ाद ने अपना पिस्तौल साधा और उसे ललकारा—भागो, हटो। परन्तु चननसिंह जोश में था, वह नहीं हटा। आज़ाद की गोली से वह धड़ाम से ज़मीन पर गिर पड़ा। एक साइकिल पर आज़ाद और राजगुरु और दूसरी पर भगतसिंह सुरक्षित अपने स्थान पर (मौजंग हाउस, लाहौर) पहुंच गए। दिन दहाड़े, पुलिस स्टेशन के सामने अंग्रेज अफसर की हत्या हो गई और किसी को पता भी नहीं चला कि यह किसने किया। शाम होते-होते यह खबर चारों ओर फैल गई। जनता के मन खुशी से भर उठे, पर यह किसी को मालूम न था कि इस धड़ाके के पीछे क्या आदर्श एवं क्या योजना है।

दूसरे दिन सुबह सूरज निकलने से पहले ही सरकार और जनता दोनों के सामने सारी बात स्पष्ट हो गई, जब दीवारों पर जगह-जगह अंग्रेजी में ये पोस्टर लगे हुए पाए गए।

हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना

नोटिस

नौकरशाही सावधान

जे० पी० साण्डर्स की मृत्यु से लाला लाजपतराय की हत्या का बदला ले लिया गया। आज संसार ने देख लिया है कि हिन्दुस्तान की जनता निष्प्राण नहीं हो गई है। वह अपने राष्ट्र के सम्मान के लिए प्राणों की बाजी लगा सकती है।

एक दूसरे पोस्टर में कहा गया था :

इस देश की दलित और पीड़ित जनता की भावनाओं को ठेस मत लगाओ। अपनी शैतानी हरकतें बंद करो। हिन्दुस्तानियों को हथियार न रखने देने के लिए बनाए तुम्हारे सब कानूनों और चौकसी के बाद भी पिस्तौल और रिवाल्वर इस देश की जनता के हाथ में आते ही रहेंगे। यह हथियार सशस्त्र क्रान्ति के लिए काफी रहेंगे। हम सब विरोध और दमन के बावजूद क्रान्ति की पुकार को बुलन्द रखेंगे और फांसी के तख्तों से भी पुकारते रहेंगे : '**इन्कलाब जिन्दाबाद**'।

ह० बलराज

28 दिसम्बर, 1929 (सेनापति-पंजाब)

इन छोटे पोस्टरों ने दो काम किए। एक तो इससे पुलिस की आंखें और भी शर्म से झुक गईं तथा जनता के मन में क्रान्तिकारियों के लिए प्यार और आदर के भाव उमड़ आए। जनता को लगा कि अभी भी कोई हैं जो दुश्मन को ललकार सकते हैं। अपराधी को पकड़ने के लिए पुलिस का जाल चारों ओर फैल गया। पुलिस नौजवान भारत सभा और स्टुडेण्ट्स यूनियन के कार्यकर्ताओं को अंधाधुंध पकड़ रही थी, पर कुछ पता न पा रही थी।

17 दिसम्बर के दोपहर की घटना के बाद इन क्रान्तिकारियों के पास खाने को रोटी तक न थी। किसी से मांग कर दस रुपये लाए तब खाने-पीने की व्यवस्था हो सकी। कैसे थे वे लोग जो इतने बड़े शत्रु से लोहा ले रहे थे और जिनके पास खाने को रोटी भी नहीं थी!

लाहौर से कलकत्ता

लाहौर में चप्पे-चप्पे पर पुलिस तैनात थी, ताकि उसकी निगाह से बचकर कोई पक्षी भी लाहौर से बाहर न जा सके, पर क्रान्तिकारियों की निगाह भी कम तेज न थी। एक नकली नाम से फर्स्ट क्लास का छोटा डिब्बा लाहौर से कलकत्ता के लिए रिजर्व कराया गया। एक नौजवान साहब बहादुर सिर पर तिरछा फैल्ट हैट लगाए, उठे कालर का ओवर कोट पहने, बाईं तरफ अपने बेटे को इस तरह गोद में सभाले हुए कि उधर से चेहरा ढक जाए, दायां हाथ ओवर कोट की जेब में डाले पिस्तौल के घोड़े पर उंगली टिकाए और बाईं तरफ अपनी सुन्दर पत्नी को लिए धीमी गति से चलते हुए प्लेटफार्म पार कर अपने रिजर्व डिब्बे में आ बैठे। साथ में शानदार बिस्तर और अटैची थी और पीछे-पीछे पुरानी दरी में लिपटा बिस्तर लिए नौकर था। यह साहब बहादुर थे भगतसिंह, उनकी पत्नी बनी थी दुर्गा भाभी (क्रान्तिकारी श्री भगवतीचरण वोहरा की पत्नी और क्रान्तिकारी दल की सदस्या) भगतसिंह की गोद में भाभी का बेटा शची था और नौकर थे राजगुरु।

पुलिस की रिपोर्ट में भगतसिंह दाढ़ी-केश वाले और कुंआरे थे, इसलिए भगतसिंह के इस रूप को पुलिस न पहचान सकी और वह सकुशल लाहौर से कलकत्ता पहुंच गए। उन्हीं दिनों कलकत्ता में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हो रहा था। देश भर के राजनैतिक नेता कलकत्ते में थे और सरकार के गुप्तचर भी। भगतसिंह बंगाली ढंग की धोती-कुर्ता पहने, शाल ओढ़े इस अधिवेशन की गतिविधियों का बड़े ध्यानपूर्वक अध्ययन कर रहे थे। कांग्रेस में विचार का मुख्य विषय था अंग्रेजी सरकार को यह अल्टीमेटम देना कि यदि सरकार एक वर्ष के भीतर नेहरू कमेटी की रिपोर्ट (लगभग औपनिवेशिक स्वराज्य) को स्वीकार न करेगी तो फिर कांग्रेस कभी भी पूर्ण स्वराज्य से कम पर राजी न होगी। पंडित जवाहरलाल नेहरू और नेताजी सुभाषचन्द्र बोस सरकार को समय देने के विरुद्ध थे। इस प्रकार कांग्रेस में पुरानी और नई पीढ़ी में काफी खींचतान चल रही थी। भगतसिंह ने स्थिति का गहराई से अध्ययन किया और वे सोचने लगे कि कांग्रेस पूर्ण स्वराज्य के अपने मद्रास निर्णय से पीछे हटकर औपनिवेशिक स्वराज्य से भी कम पर आ गई थी। उन्होंने सोचा, यह तो प्रगति नहीं, पीछे हटना है। वे बेचैन हो उठे कि इस समय कुछ ऐसा काम करना चाहिए कि पीछे हटने की इस आदत पर तगड़ी चोट पड़े।

भगतसिंह के मन में नेशनल कालेज के समय से ही फ्रांसीसी अराजकतावादी वेलां की (जिसने फ्रांस की असेम्बली में बम फेंका था) तस्वीर सजी हुई थी। उन्हें लगा कि यही समय है जब कुछ करना चाहिए। उनकी बुद्धि ने कहा, अब नहीं तो फिर कभी नहीं। उन्होंने दिल्ली केन्द्रीय असेम्बली में बम फेंकने का निर्णय कर लिया और इस तरह वे बलिवेदी पर खड़े हुए।

भगतसिंह ने असेम्बली भवन में बम फेंकने की योजना के बारे में अनुशीलन समिति नामक गुप्त संगठन के एक उच्चकोटि के नेता श्री प्रतुलचन्द्र गांगुली के साथ बातचीत की। उन्होंने भगतसिंह की योजना को पसन्द किया। असेम्बली में बम फेंकने के बाद गिरफ्तार होने पर जो रिवाल्वर उनके पास पाया गया था वह भगतसिंह को श्री गांगुली ने ही दिया था। बम भी कलकत्ता में ही दिए गए थे। भगतसिंह का प्रसिद्ध चित्र (फैल्ट हैट पहने) भी कलकत्ता में ही लिया गया था।

कलकत्ता से भगतसिंह आगरा लौट आए, जहां बहुत से दूसरे साथी भी थे। हींग की मंडी और नमक की मंडी में दो मकान ले लिए गए थे और बम बनाने तथा बनाना सिखाने का काम जोरों से चल रहा था। सहारनपुर और लाहौर में भी बम की फैक्टरियां खोल दी गई थीं। साण्डर्स की हत्या के बाद दल के पास धन इत्यादि की पहले जैसी कमी न थी। असेम्बली में बम फेंकने की भगतसिंह की योजना केन्द्रीय समिति ने स्वीकार कर ली थी। भगतसिंह आगरा से दिल्ली आते-जाते रहते थे और बारीकी से स्थिति का अध्ययन कर रहे थे। देश में सरकार के गुप्तचर चारों ओर अपना जाल फैला रहे थे, परन्तु उन्हें साण्डर्स के वध का कोई सूत्र नहीं मिल रहा था और अब एक और बड़े कांड की तैयारी हो रही थी।

देश की आजादी के लिए संघर्ष करने वाले इन वीरों का हर क्षण किसी न किसी योजना के निर्माण में लगा रहता था। जीवन हर क्षण खतरे में था। क्या खबर कब, कौन, कहां पकड़ा जाए। जो एक बार बाहर गया वह लौटेगा भी या नहीं? फिर भी ये लोग इतने सजीव थे कि उदासी का कोई क्षण इनके जीवन में था ही नहीं। जब भी जरा-सा समय मिलता तभी महफिल जम जाती। हंसी-मजाक, शेर, गजल सभी कुछ चलता। पर कैसा होता था इनकी हंसी-मजाक उसका एक उदाहरण यहां प्रस्तुत है।

आगरे के एक मकान में बहुत से साथी फुरसत से बैठे तो हंसी-मजाक आरम्भ हो गया। विषय था : कौन कैसे पकड़ा जाएगा?

तभी आवाज आई—ये हज़रत (राजगुरु) तो सोते हुए ही पकड़े जाएंगे। हद हो गई, जनाब चलते-चलते भी सो जाते। इनकी आंख पुलिस लाक-अप में खुलेगी और तब ये पहरे वालों से पूछेंगे मैं सचमुच पकड़ा गया हूं या स्वप्न देख रहा हूं। बटुकेश्वरदत्त चांदनी रात में पार्क में चांद देखते हुए पकड़े जाएंगे। पकड़े जाने पर पुलिस वालों से आप कहेंगे—कोई बात नहीं, मगर चांद है कितना सुन्दर!

विजयकुमार सिन्हा और भगतसिंह किसी सिनेमाहाल में पकड़े जाएंगे और तब पुलिस से कहेंगे—जी हां, पकड़ लिया, तो क्या गजब हो गया। अब खेल तो पूरा देख लेने दो।

और पंडितजी (चन्द्रशेखर आजाद) बुन्देलखण्ड की किसी पहाड़ी में शिकार खेलते हुए किसी मित्र बने राजभक्त के विश्वासघात से घायल होकर बेहोशी की हालत में पकड़े जाएंगे। आजाद ने झिड़की की हंसी-हंसी। भगतसिंह ने मजाक करते हुए कहा—पंडितजी, आपके लिए दो रस्सों की ज़रूरत पड़ेगी। एक आपके गले के लिए और दूसरा इस भारी भरकम पेट के लिए।

आजाद तुरन्त हंसकर बोले—देख फांसी जाने का शौक मुझे नहीं है, वह तुझे मुबारक हो। रम्मा-फस्सा तुम्हारे गले के लिए है।-जब तक यह पिस्तौल मेरे पास है, किसने मां का दूध पिया है, जो मुझे जीवित पकड़ ले जाए?"

बस इसी तरह किसी न किसी विषय पर हंसी-मज़ाक चलता रहता था। जीवन के प्रति कितने निर्लिप्त थे भगतसिंह और उनके साथी। हर क्षण खतरों से खेल रहे थे, जाने क्या-क्या झेल रहे थे, फिर भी कितने सजीव थे!

असेम्बली में बम का धमाका

असेम्बली में बम फेंकने की बात भगतसिंह के मन में नेशनल कालेज में ही पक्की हो गई थी, जब से उन्होंने फ्रांसीसी अराजकतावादी वेलां का फ्रांस की असेम्बली में बम फेंकने के बाद दिया गया बयान पढ़ा था। कलकत्ता से जब भगतसिंह आगरा के लिए चले तो उनके मन में इस कार्य की पूरी रूपरेखा थी।

चन्द्रशेखर आज़ाद और दूसरे साथी भी इससे सहमत हो गये थे। दल के सभी सदस्य यह अनुभव करते थे कि इस समय कुछ करना चाहिए, जो लोगों को चौंका दे। बम फेंकने का निर्णय हो जाने के उपरान्त तीन प्रश्नों पर विचार होना बाकी था।

पहला यह कि बम फेंकने असेम्बली में कौन जाए, दूसरा बम फेंकने के बाद गिरफ्तार हुआ जाए या भागा जाए और तीसरा यह कि बम कब फेंका जाए? चन्द्रशेखर आज़ाद इस बात पर दृढ़ थे कि बम फेंक कर भाग निकला जाए। असेम्बली भवन में जाकर और सब रास्तों को देख कर वे मानते थे कि बम फेंक कर सुरक्षित लौटा जा सकता है। उनका कहना था कि वे बाहर मोटर में रहेंगे और बम फेंकने वालों को भगा ले जाएंगे, पर भगतसिंह तो गुप्त आन्दोलन को जनता का आन्दोलन बनाने की बात पर दृढ़ थे। इसलिए उनका कहना था कि भागना ठीक नहीं, वहीं गिरफ्तार हो कर मुकदमे को दल के विचारों के प्रचार का मोर्चा बनाया जाए क्योंकि जो बातें वैसे नहीं कही जा सकतीं, वे अदालत में खुलेआम कही जा सकती हैं, जो खबरें बन कर समाचारपत्रों में छप कर जनता तक पहुंचेंगी।

असेम्बली में बम फेंकने की बात भगतसिंह ने कही थी और यह भी सब जानते थे कि बम फेंकने भी वही जायेंगे। बाद में दो आदमियों के जाने की बात तय हुई तो भगतसिंह के साथ जयदेव कपूर और राजगुरु के नाम की चर्चा हुई, परन्तु कोई अन्तिम निर्णय नहीं हो पाया।

संयोगवश उन्हें अवसर भी अच्छा मिल गया। केन्द्रीय असेम्बली में दो बिल पेश थे। पहला 'पब्लिक सेफ्टी बिल' (जनसुरक्षा बिल) और दूसरा ट्रेड डिस्प्यूट बिल' (औद्योगिक विवाद बिल)। पहले का उद्देश्य था देश में उठते युवक आन्दोलन को कुचलना और दूसरे का मजदूरों को हड़ताल के अधिकार से वंचित रखना। भगतसिंह का चौकन्ना और जागरूक ध्यान इस बात पर गया कि केन्द्रीय असेम्बली के कांग्रेसी सदस्य कुछ दूसरे प्रगतिशील सदस्यों के साथ मिल कर इन बिलों को पास नहीं होने देंगे। उस हालत में अंग्रेजी सरकार उन्हें अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेगी और वाइसराय उन्हें अपने विशेषाधिकार से पास कर देंगे। इसलिए उन्होंने पार्टी की मीटिंग में प्रस्ताव किया कि जब वाइसराय की इन बिलों को पास करने की घोषणा असेम्बली में हो उसी समय बम फेंका जाए और अपने उद्देश्य को स्पष्ट करने वाले पर्चे भी।

बम फेंकने कौन जाए इस प्रश्न पर मतभेद था। बम फेंकने का प्रस्ताव भगतसिंह का था।

वे मुकदमे को अच्छे ढंग से लड़ सकते थे इसलिए वे स्वयं ही जाना चाहते थे, पर दल के कई सदस्यों की राय में दल की उन्नति और संगठन के लिए उनका और आज़ाद का बचे रहना बहुत आवश्यक था। लम्बे विचार-विमर्श और वाद-विवाद के बाद भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त का नाम निश्चित हुआ।

भगतसिंह को जैसी सम्भावना थी ठीक वैसा ही हुआ। असेम्बली ने दोनों बिलों को अस्वीकार कर दिया था और वाइसराय ने उन दोनो को अपने विशेषाधिकार से पास किया। 8 अप्रैल, 1929 को वाइसराय के निर्णय की घोषणा असेम्बली में सुनाई जाने वाली थी। यह निश्चय किया गया कि उसी दिन बम फेंका जाए। जयदेव कपूर ने भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त को असेम्बली में ले जा कर उसी जगह बैठा दिया जहां से बिना किसी सदस्य को नुकसान पहुंचाए बम फेंका जा सकता था। भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त खाकी कमीज और नेकर पहने हुए थे।

ज्यों ही विशेषाधिकार से बिलों को वायसराय द्वारा पास करने की घोषणा होने का समय हुआ भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त अपने स्थान पर खड़े हो गए। जल्दी से अखबार में लिपटा हुआ बम भगतसिंह ने अपने हाथ मे लिया और सरकारी बेचों के पीछे वाली खाली जगह पर लकड़ी की दीवार के पास फेंक दिया। धमाका इतने जोर का हुआ कि कानों के पर्दे तक हिल गए। सपाटे के साथ भगतसिंह ने दूसरा बम फेंका। उस धड़ाके ने लोगों के रहे-सहे होश भी गुम कर दिए। तभी उन्होंने छत की ओर हाथ उठा कर पिस्तौल से दो गोलियां छोड़ी। साइमन साहब भी वाइसराय की गैलरी में बैठे असेम्बली की कार्रवाई देख रहे थे। सबसे पहले वे भागे। सर जार्ज शुस्टर अपने डेस्क के नीचे छिप गए। कुछ सदस्य भाग कर बाहर आ गए, कुछ गैलरी में चले गए और कुछ शौचालयों में जा छिपे। बमों के फटने से पूरे हाल में भरा धुआं जब साफ हुआ तो सदन खाली था केवल कुछ भारतीय सदस्य अपनी जगहों पर बैठे थे। दर्शक गैलरियां भी बिल्कुल खाली थीं। उनमें अपनी जगह पर खड़े थे भगतसिंह और दत्त। उन्होंने पूरे जोर से नारा लगाया 'इन्कलाब-जिन्दाबाद' साथ ही दूसरा नारा गूंजा 'साम्राज्यवाद का नाश हो।' उसी समय बटुकेश्वरदत्त ने कुछ परचे हाउस में फेंके, जिन पर अंग्रेजी में लिखा था :—

"हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना"

"बहरों को सुनाने के लिए ऊंची आवाज़ की जरूरत होती है।" फ्रांस के अराजकतावादी शहीद वेलाँ के ऐसे ही अवसर पर कहे गए इन अमर शब्दों से क्या हम अपने काम का औचित्य सिद्ध कर सकते हैं?

"शासन सुधारों के नाम पर ब्रिटिश हुकूमत द्वारा पिछले दस वर्षों में हमारे देश का जो अपमान किया गया है, उस निन्दनीय कहानी को हम दोहराना नहीं चाहते। हम भारत राष्ट्र के नेताओं के साथ किए गए अपमानों का भी उल्लेख नहीं करना चाहते, जो इस असेम्बली द्वारा किए गए हैं, जिसे भारत की पार्लियामेंट कहा जाता है।

"हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि कुछ लोग साइमन कमीशन के द्वारा सुधारों के नाम से जो जूठे टुकड़े मिलने की सम्भावना है, उसकी आशा लगाए हुए हैं और मिलने वाली ताजी हड्डियों के बंटवारे के लिए झगड़ा तक कर रहे हैं। इसी समय सरकार भी

भारतीय जनता पर दमनकारी कानून लादती जा रही है, जैसे कि 'पब्लिक सेफ्टी बिल', 'ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल'। मजदूर नेता जो खुले रूप में अपना कार्य कर रहे थे, उनकी अंधाधुंध गिरफ्तारियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकार का रुख क्या है?

"इन बेहद उत्तेजक परिस्थितियों में 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र संघ' ने पूर्ण गम्भीरता के साथ अपना उत्तरदायित्व अनुभव करते हुए अपनी सेना को इस कार्य का आदेश दिया है, जिससे कानून का यह अपमानजनक मज़ाक बन्द हो। विदेशी सरकार की शोषक नौकरशाही चाहे जो करे, परन्तु उसका नग्न रूप तो जनता के सामने लाना बहुत आवश्यक है।

"जनता के चुने हुए प्रतिनिधि अपने निर्वाचन क्षेत्रों में लौट जाएं और जनता को आनेवाली क्रान्ति के लिए तैयार करें। सरकार को यह जान लेना चाहिए कि 'पब्लिक सेफ्टी बिल' और 'ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल' और लालाजी की नृशंस हत्या का असहाय भारतीय जनता की ओर से विरोध करते हुए हम इस पाठ पर जोर देना चाहते हैं, जिसे कि बहुत बार इतिहास ने दोहराया है कि व्यक्तियों की हत्या कर डालना आसान है, लेकिन तुम विचारों की हत्या नहीं कर सकते। बड़े-बड़े साम्राज्य नष्ट हो गए, जबकि विचार ज़ीवित रहे। (फ्रांस के) बूरबाँ और (रूस के) जार समाप्त हो गए, जबकि क्रान्तिकारी विजय की सफलता के साथ आगे बढ़ गए।

"हम मनुष्य के जीवन को पवित्र समझते हैं। हम ऐसे उज्जवल भविष्य में विश्वास रखते हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण शान्ति और स्वतन्त्रता का उपभोग करेगा। हम मानव रक्त बहाने के लिए अपनी विवशता पर दुःखी हैं, परन्तु क्रान्ति द्वारा सबको समान स्वतन्त्रता देने और मनुष्य के शोषण को समाप्त कर देने के लिए क्रान्ति में कुछ व्यक्तियों का बलिदान अनिवार्य है।"

इन्कलाब-जिन्दाबाद।

(ह० बलराज)
(कमाण्डर-इन-चीफ)

असेम्बली भवन में अपनी जगह काफी देर खड़े रहने के बाद सार्जण्ट टेरी उनके पास आया और बाद में इंस्पेक्टर मिस्टर जानसन। दोनों घबराहट में थे, भगतसिंह ने पिस्तौल, जिसमें उस समय भी गोलियां थीं, सामने के डेस्क पर रख दिया। उनके इस व्यवहार से वे शान्त हुए और तब पास आकर हथकड़ियां डाल दीं। बम फेंकने और पकड़े जाने के बीच में इतना समय था कि यदि भगतसिंह और दत्त चाहते तो आसानी से भाग कर बच निकलते, परन्तु जैसा कि पहले से ही तय था, वे अपनी जगह पर स्थिर-शान्त खड़े रहे। पुलिस जब उन्हें कोतवाली ले चली तो उन्होंने फिर नारा लगाया—इन्कलाब-जिन्दाबाद। यह नारा साण्डर्स वध के बाद लाहौर में जो पोस्टर दीवारों पर लगाए गए थे उसमें भी था, पर वास्तव में समूचे देश ने असेम्बली बम काण्ड के समय ही यह सुना। यह नारा सशस्त्र क्रान्ति के इतिहास को भगतसिंह की विशेष देन है। उनकी इस देन को जनता ने आश्चर्यजनक तेज़ी से स्वीकार कर लिया। आज भी जब इन्कलाब-

जिन्दाबाद' का नारा हमारे कानों में गूंजता है तो साथ-ही-साथ भगतसिंह-ज़िन्दाबाद का नारा हमारे मस्तिष्क में घूम जाता है।

कोतवाली में जब पुलिस ने उनसे बयान देने को कहा तो उन्होंने जवाब दिया कि हमें पुलिस के सामने कोई बयान नहीं देना है। जो कुछ हमें कहना है हम अदालत के सामने ही कहेंगे। तब पुलिस ने उन्हें दिल्ली जेल भेज दिया।

असेम्बली बम काण्ड के कुछ दिनों बाद शिववर्मा, चन्द्रशेखर आज़ाद से मिलने झांसी गए। झांसी में क्रांतिकारियों के निवास पर उस दिन काफी भीड़ थी। सभी साथी दत्त और भगतसिंह के बारे में अधिक-से-अधिक जानने के लिए उत्सुक थे। अखबार में छपे भगतसिंह और दत्त के चित्र देख कर सभी की आंखों में आंसू आ गए, लेकिन आज़ाद अपने ऊपर काबू किए बैठे रहे। इसी बीच एक साथी किसी काम से उठ कर बाहर जाने लगा, तो उसका पैर सामने पड़े अखबार पर पड़ गया जिसमें दोनों साथियों के चित्र छपे थे। आजाद ने पैर पड़ते देख लिया और वे गरज उठे। शीघ्र ही अपने ऊपर काबू पा कर उन्होंने उस साथी का हाथ पकड़ कर अपने पास बैठा लिया। उनकी आंखों में आंसू छलछला आए थे। बोले : "ये लोग देश की सम्पत्ति हैं, शहीद हैं, देश इनको पूजेगा। अब इनका दर्जा हम लोगों से बहुत ऊंचा है। इनके चित्र पर पैर रखना देश की आत्मा को रौंदने के बराबर है।" कहते-कहते उनका गला भर आया। ऊपर से बेहद कठोर दिखाई देने वाले आजाद का हृदय कितना कोमल था और वे कितना प्यार करते थे अपने साथियों को यह इसी एक घटना से स्पष्ट है।

अदालत में

दिल्ली जेल में 4 जून, 1929 को मुकदमे की सुनवाई सेशन जज मिस्टर मिडलटन की अदालत में आरम्भ हुई। सरकारी गवाहों के बयान के बाद भगतसिंह ने अपनी और बटुकेश्वर दत्त की ओर से 6 जून, 1929 को जो बयान दिया उसके कुछ अंश यहां दिए जा रहे हैं :—

"हमारे विरुद्ध गम्भीर अपराधों के आरोप लगाए गए हैं, हम इस समय अपने आचरण का स्पष्टीकरण करना चाहते हैं।"

इस सम्बन्ध में निम्न प्रश्न उठते हैं :—

1. "क्या सदन में बम फेंके गए थे? यदि ऐसा हुआ तो इसका क्या कारण था?"

2. "निम्न न्यायालय ने जिस प्रकार आरोप लगाया है वह सही है अथवा नहीं?"

"पहले प्रश्न के आधे भाग के लिए हमारा उत्तर स्वीकारात्मक है, परन्तु कुछ साथियों ने घटना का असत्य विवरण प्रस्तुत किया है। हम बम फेकने का दायित्व स्वीकार करते हैं, अतः हम यह चाहते हैं कि हमारे इस वक्तव्य का सही मूल्यांकन किया जाए। सार्जेंट टेरी का यह कथन है कि उन्होंने हममें से एक के हाथ से पिस्तौल छीन ली, जानबूझ कर बोला गया असत्य है। वास्तव में जिस समय हमने आत्मसमर्पण किया उस समय हम दोनों में से किसी के पास पिस्तौल नहीं थी। जिन साक्षियों ने यह कहा है कि उन्होंने हमें बम फेंकते हुए देखा, उन्हें भी बे-सिर-पैर का झूठ बोलने में कोई झिझक नहीं आई। हमें आशा है कि जिन लोगो का ध्येय न्यायिक शुद्धता तथा निष्पक्षता की रक्षा करना है वे इन तथ्यों से स्वयं निष्कर्ष निकालेंगे।

"मानव मात्र के प्रति हमारा प्रेम किसी से भी कम नहीं है, अतः किसी व्यक्ति के प्रति विद्वेष रखने का प्रश्न ही नहीं उठता, इसके विपरीत हमारी दृष्टि में मानव जीवन इतना अधिक पवित्र है कि उस पवित्रता का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। कुछ लोगों ने हमें देश के लिए अपमानजनक और पागल बताया है। हम नम्रतापूर्वक यह दावा करते हैं कि हमने इतिहास, अपने देश की परिस्थिति तथा मानवीय आकांक्षाओं का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया है। हम पाखण्ड से घृणा करते हैं।

"हमारा ध्येय उस संस्था (विधानमण्डल) के विरुद्ध अपना व्यावहारिक विरोध प्रकट करना था, जिसने अपने आरम्भ से केवल निरुपयोगिता का ही नहीं वरन् हानि पहुंचाने की शक्ति का भी नग्न प्रदर्शन किया है। जनता के प्रतिनिधियों की राष्ट्रीय मांग को बार-बार रद्दी की टोकरी में फेंक दिया जाता रहा है। निर्वाचित प्रतिनिधियों ने जिन सरकारी कानूनों और प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया उनको भी सरकार द्वारा मनमाने ढंग से स्वीकृति प्रदान की जा रही है।

"संक्षेप में ईमानदारी के साथ प्रयत्न करने पर भी हमारी समझ में यह नहीं आ रहा है कि

एक ऐसी संस्था का अस्तित्व किस प्रकार न्यायसंगत माना जा सकता है, जिसकी शान-शौकत बनाए रखने के लिए भारत के करोड़ों लोगों के गाढ़े पसीने की कमाई व्यय की जाती है तथापि जो सारहीन अभिनय और शैतानी से भरा षड्यन्त्र मात्र बन कर रह गई है।

"हम श्रमिक आन्दोलन के नेताओं की गिरफ्तारियों पर गम्भीरता से चिन्तन करते हैं और जब इस विषय पर होने वाले विवाद (ट्रेड डिस्प्यूट विधेयक) की आंखों देखी जानकारी प्राप्त करने के लिए हम असेम्बली में आए तो हमारी यह धारणा और भी पुष्ट हो गई कि भारत के करोड़ों मेहनत करने वालों को एक ऐसी संस्था मे कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता जो शोषकों की दम घोटने वाली सत्ता और असहाय श्रमिकों की पराधीनता का एक खतरनाक स्मारक बन कर रह गई है।

"हमारा एक मात्र उद्देश्य यह था कि हम बहरों को अपनी आवाज़ सुनाएं और समय की चेतावनी उन लोगों तक पहुचाएं जो उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। दूसरे लोग भी हमारी ही तरह सोच रहे हैं और यद्यपि भारतीय जाति ऊपर से एक शान्त समुद्र की भांति दिखाई दे रही है तथापि भीतर-ही-भीतर एक भयंकर तूफान उफन रहा है। हमने उन लोगों को खतरे की चेतावनी दी है, जो सामने आने वाली गम्भीर परिस्थितियों की चिन्ता किए बिना सरपट दौड़े जा रहे हैं।

"इस देश में एक नया आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है, जिसकी पूर्वसूचना हम दे चुके हैं। यह आन्दोलन गुरु गोबिन्दसिंह और शिवाजी, कमालपाशा और रिजा खां, वाशिंग्टन और गैरीबाल्डी तथा लाफायेते और लेनिन के कार्यो से प्रेरणा ग्रहण करता है। हमें ऐसा लगा कि विदेशी सरकार ने इस आन्दोलन की ओर से आंखें मूंद ली हैं तथा उनके कानों में इसकी आवाज़ नहीं पड़ी है। अतः हमें यह कर्तव्य प्रतीत हुआ है कि हम ऐसे स्थानों पर चेतावनी दें जहां हमारी आवाज़ अनसुनी न रह सके।"

उन्होंने अपने बयान में यह भी बताया कि वे बमों की शक्ति को पूरी तरह जानते थे। ये बम बनाए ही इस ढंग से गए थे कि इनसे किसी की जान न जाए, मात्र धमाका ही हो।

> "यदि बमों के भीतर प्रभावशाली विस्फोटक तथा विनाशकारी तत्व भरे होते तो वे विधान सभा के अधिकांश सदस्यों की जीवनलीला समाप्त कर सकते थे। हम यह भी कर सकते थे कि हम उसे सरकारी बाक्स में फेंकते जहां महत्वपूर्ण लोग बैठे थे और आखिरकार हम यह भी कर सकते थे कि उस समय अध्यक्ष की गैलरी में बैठे हुए सर जान साइमन पर चोट करते जिसके दुर्भाग्यपूर्ण कमीशन से देश के सभी पढ़े-लिखे लोग घृणा करते हैं। परन्तु हमारा प्रयोजन यह सब नहीं था और बमों का जिस प्रयोजन के लिए निर्माण किया था, उन्होंने उससे अधिक काम नहीं किया। इसमें कोई चमत्कार नहीं था, हमने जानबूझ कर यह ध्येय निश्चित किया था कि सभी लोगों का जीवन सुरक्षित रहे।"

भगतसिंह और दत्त यदि चाहते तो बम फेंकने के बाद आसानी से भाग सकते थे, परन्तु उनका उद्देश्य तो क्रान्ति को जनता तक पहुंचाना था और इसके लिए आवश्यक था कि वे स्वयं को गिरफ्तार करवा कर अदालत के माध्यम से अपने विचारों को सरकार और जनता के सामने रखें। उन्होंने आगे कहा :—

"इसके पश्चात् हमने अपने कार्य के परिणामस्वरूप दण्ड प्राप्त करने के लिए स्वेच्छा से अपने आप को प्रस्तुत कर दिया और साम्राज्यवादी शोषकों को यह बता दिया कि वे व्यक्तियों को कुचल सकते हैं, विचारों की हत्या नहीं कर सकते। दो महत्वहीन इकाइयों को कुचल देने से राष्ट्र नहीं कुचला जा सकता। हम इस ऐतिहासिक निष्कर्ष पर बल देना चाहते हैं कि फ्रांस का क्रान्तिकारी आन्दोलन कुचला नहीं जा सका। फांसी की रस्सी और साइबेरिया में बिछाई गई माइन रूसी क्रान्ति की ज्वाला को नहीं बुझा सकीं। अतः यह भी असम्भव है कि अध्यादेश और सुरक्षा विधेयक भारतीय स्वाधीनता की लपटों को बुझा सकें...।"

न्यायालय में भगतसिंह से पूछा गया था कि क्रान्ति से वे क्या समझते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा :—"क्रान्ति में घातक संघर्षों का अनिवार्य स्थान नहीं है, न उसमें व्यक्तिगत रूप से बदला लेने की ही गुंजाइश है। क्रान्ति बम और पिस्तौल की संस्कृति नहीं है। क्रान्ति से हमारा प्रयोजन यह है कि अन्याय पर आधारित वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन होना चाहिए। एक ओर सबके लिए अन्न उगाने वाले कृषक सपरिवार भूखों मर रहे हैं, सारी दुनिया के बाजारों में कपड़े की पूर्ति करने वाले बुनकर अपने और अपने बच्चों के शरीर को ढांपने के लिए पूरे वस्त्र प्राप्त नहीं कर पाते, भवन निर्माण, लोहारी और बढ़ईगिरी के कामों में लगे लोग शानदार महलों का निर्माण कर के भी गन्दी बस्तियों में रहते और मर जाते हैं, दूसरी ओर पूंजीपति, शोषक और समाज पर घुन की तरह जीने वाले लोग अपनी सनक पूरी करने के लिए करोड़ों रुपया पानी की तरह बहा रहे हैं। यह भयंकर विषमताएं और विकास के अवसरों की कृत्रिम समानताएं समाज को अराजकता की ओर ले जा रही हैं।

"अतः क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है और जो लोग इस आवश्यकता को अनुभव करते हैं उनका यह कर्तव्य है कि वे समाज को समाजवादी आधारों पर पुनर्गठित करें। जब तक यह नहीं होगा और एक मनुष्य के द्वारा दूसरे मनुष्य का तथा एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण होता रहेगा, जिसे साम्राज्यवाद कहा जा सकता है, तब तक उससे उत्पन्न होने वाली पीड़ाओं और अपमानों से मानव जाति को नहीं बचाया जा सकता।

"क्रान्ति से हमारा प्रयोजन अन्ततः एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था कायम करना है जिसको इस प्रकार के घातक खतरों का सामना न करना पड़े और जिसमें सर्वहारा वर्ग की प्रभुता को मान्यता दी जाए।"

वे आगे कहते हैं—"क्रान्ति मानव जाति का जन्मजात अधिकार है। स्वतंत्रता सभी मनुष्यों का एक ऐसा जन्मसिद्ध अधिकार है जिसे किसी भी स्थिति में छीना नहीं जा सकता। श्रमिक वर्ग समाज का वास्तविक आधार है। लोक-प्रभुता की स्थापना श्रमिकों का अन्तिम ध्येय है। इन आदर्शों तथा इस आस्था के लिए हम उन सब कष्टों का स्वागत करेंगे जो हमें न्यायालय द्वारा दिए जाएंगे। क्रान्ति की इस वेदी पर हम अपना यौवन धूपबत्ती की भांति जलाने के लिए सन्नद्ध हुए हैं। इतने महान ध्येय के लिए कोई भी बलिदान बड़ा नहीं माना जा सकता। हम क्रान्ति की उन्नति की सन्तोषपूर्वक प्रतीक्षा करेंगे। इन्कलाब जिन्दाबाद।"

इस वक्तव्य में भगतसिंह ने नई समाज-व्यवस्था की रूपरेखा दी और इन्होंने ही पहली बार समाजवादी समाज की घोषणा की। जब यह वक्तव्य समाचारपत्रों में प्रकाशित हुआ तो

देशवासियों का ध्यान भगतसिंह पर केन्द्रित हो गया। उनकी जोशीली भाषा, नई विचार पद्धति और कष्ट झेलने के लिए हंसते-हंसते आगे बढ़ना तथा बलिदान के प्रति इतना साहस और निर्लिप्तता—इस सब के कारण वे सब के प्रिय हो गए।

10 जून, 1929 को केस की सुनवाई समाप्त हो गई और उसके तुरन्त बाद भगतसिंह को मियांवाली जेल में और बटुकेश्वरदत्त को लाहौर सेंट्रल जेल में भेज दिया गया।

हाई कोर्ट में अपील

असेम्बली बम काण्ड के मुकदमे में बचाव का प्रयत्न बिल्कुल नहीं किया गया था फिर भी सेशन जज के फैसले की अपील हाई कोर्ट में कर दी गई। यह भी भगतसिंह की योजना का ही एक अंग था। वे अपने विचारों को जनता तक पहुंचा कर जनमानस में क्रान्ति लाने के प्रयास में लगे थे, अतः यह एक और मौका था कि वे हाई कोर्ट के मंच पर खड़े हो कर क्रान्ति को उभार सकें।

जस्टिस फोर्ड और जस्टिस एडीसन के सामने लाहौर कोर्ट में अपील पेश हुई। भगतसिंह ने दिल्ली की अदालत में बयान देने में अत्यधिक कुशलता का परिचय दिया। यहां तो वे और भी अधिक जोश और उत्साह से बोले। उन्होंने इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास किया कि बम फेंकते समय उनकी नीयत क्या थी। उस लम्बे महत्वपूर्ण बयान के कुछ अंश यहां प्रस्तुत हैं:—

> "असेम्बली में हमने जो दो बम फेंके, उनमें किसी भी व्यक्ति की शारीरिक या आर्थिक हानि नहीं हुई, इस दृष्टिकोण से हमें जो सजा दी गई है, यह कठोरतम ही नहीं, बदला लेने की भावना वाली भी है। यदि दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाए तो जब तक अभियुक्त की मनोभावना का पता न लगाया जाए उसके असली उद्देश्य का पता नहीं चल सकता। यदि उद्देश्य को पूरी तरह भुला दिया जाए तो किसी भी व्यक्ति के साथ न्याय नहीं हो सकता, क्योंकि उद्देश्य को नजरों में न रखने पर संसार के बड़े-बड़े सेनापति साधारण हत्यारे नजर आएंगे, सरकारी कर वसूल करने वाले अधिकारी चोर जालसाज दिखाई देंगे और न्यायाधीशों पर भी कत्ल करने का अभियोग लगेगा।"

"यदि उद्देश्य को भुला दिया जाए तो हर धर्म-प्रचारक झूठ का प्रचारक दिखाई देगा और हर-एक पैगम्बर पर अभियोग लगेगा कि उसने करोड़ों भोले और अनजान लोगों को गुमराह किया और उस स्थिति में हजरत ईसा मसीह गड़बड़ कराने वाले, शान्ति भंग करने वाले और विद्रोह का प्रचार करने वाले दिखाई देंगे और कानून के शब्दों में खतरनाक व्यक्तित्व माने जाएंगे। लेकिन हम उनकी पूजा करते हैं, इसलिए कि उनके प्रयत्नों का प्रेरक एक ऊंचे दरजे का उद्देश्य था।"

इन्कलाब ज़िन्दाबाद और साम्राज्यवाद मुर्दाबाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा, "इन्कलाब-ज़िन्दाबाद से हमारा वह उद्देश्य नहीं था जो आम तौर पर गलत अर्थ में समझा जाता है। पिस्तौल और बम इन्कलाब नहीं लाते। बल्कि इन्कलाब की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है और यही चीज थी जिसे हम प्रकट करना चाहते थे। हमारे इन्कलाब का अर्थ पूंजीवाद और पूंजीवादी युद्धों की मुसीबतों का अन्त करना है। मुख्य उद्देश्य और उसे प्राप्त करने की

प्रक्रिया को समझे बिना किसी के सम्बन्ध में निर्णय देना उचित नहीं है। गलत बातें हमारे साथ जोड़ना साफ-साफ अन्याय है।''

बमों के अन्दर कितनी शक्ति है, इसकी उन्हें पूरी जानकारी थी और बम इसलिए खाली स्थान पर फेंके गए ताकि किसी को चोट न आए। इस सम्बन्ध में स्पष्टीकरण करते हुए भगतसिंह ने कहा : ''यदि हमें बमों की ताकत के सम्बन्ध में कोई ज्ञान न होता तो हम पण्डित मोतीलाल नेहरू, श्री केसकर, श्री जयकर, श्री जिन्ना जैसे सम्माननीय राष्ट्रीय नेताओं की उपस्थिति में क्यों बम फेंकते ? हम नेताओं के जीवन को किस तरह खतरे में डाल सकते थे ? बमों की ताकत के सम्बन्ध में हमें निश्चित जानकारी थी, उसी कारण ऐसा साहस किया। जिन बेंचों पर लोग बैठे थे, उन पर बम फेंकना कहीं आसान काम था लेकिन खाली जगह पर बम फेंकना निहायत मुश्किल काम था। अगर बम फेंकने वाले सही दिमाग के न होते, या वे परेशान होते तो बम खाली जगह की बजाय बेंचों पर गिरते। मैं तो कहूंगा कि खाली जगह के चुनाव के लिए जो हिम्मत हमने दिखाई उसके लिए हमें इनाम मिलना चाहिए।''

अन्त में उन्होंने कहा : ''इन हालातों में माई लार्ड, हम सोचते हैं कि हमें ठीक तरह नहीं समझा गया। आपकी सेवा में हम सजाओं की कमी कराने नहीं आए बल्कि अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए आए हैं। हम तो चाहते हैं कि न तो हमसे अनुचित व्यवहार किया जाए और न ही हमारे सम्बन्ध में अनुचित राय दी जाए। सजा का सवाल हमारे लिए गौण है।''

उपरोक्त दोनों बयान अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। वास्तव में भगतसिंह को पूरी तरह समझने के लिए इन दोनों बयानों का अध्ययन बहुत ही आवश्यक है। भले ही बयान बहुत महत्वपूर्ण था परन्तु सत्ता के नशे में चूर जजों ने इसे स्वीकार नहीं किया और सेशन जज के फैसले को बहाल रखते हुए भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त को आजन्म कारावास का दण्ड सुना दिया।

भूख हड़ताल

असेम्बली बम काण्ड का मुकदमा दिल्ली में चला था, जहां भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त यूरोपीय वार्ड में रखे गए थे और उनके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया गया था। फिर भी मुकदमे के समाप्त होते ही उन्होंने भूख हड़ताल करने का निर्णय क्यों किया? उनका उद्देश्य था अपने जीवन की आहुति दे कर जेलों में राजनैतिक कैदियों की दशा में सुधार लाना। भगतसिंह ने जेलों में होने वाले अत्याचारों के बारे में बहुत कुछ पढ़ा सुना तो था ही, उन्हें स्वयं भी इसका अनुभव था। 1927 में भगतसिंह को जब दशहरा बम काण्ड में गिरफ्तार किया गया तो पन्द्रह दिन तक उन्हें लाहौर के किले में रखा गया था, जहां उन पर बहुत अत्याचार हुए थे। लगातार सवाल पूछे जाना, नींद न लेने देना, घंटों खड़े रखना और इस सबसे भी भयंकर यह कि तारकोल का तोबरा मुंह पर बांध देना और नीचे से उसे सेंकना जिससे उसकी गरम लौ सांस से जा कर बहुत कष्ट दे। उन्होंने क्या नहीं सहा था! पर वे यह नहीं चाहते थे कि आने वाली पीढ़ियां भी यह सब सहन करें। इसी पृष्ठभूमि में दिल्ली से चलने से पहले ही भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त ने भूख हड़ताल करने का निर्णय किया।

12 जून, 1929 को असेम्बली बम काण्ड के मुकदमे में भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त को आजीवन कारावास का दण्ड सुनाया गया और उसके तुरन्त बाद ही भगतसिंह को मियांवाली जेल और बटुकेश्वरदत्त को लाहौर जेल भेजा गया। दोनों को एक ही रेल के अलग-अलग डिब्बों में ले जाया गया। लाहौर पहुंचने से कुछ स्टेशन पहले अंग्रेज सार्जेण्ट भगतसिंह को बटुकेश्वरदत्त के डिब्बे में ले गया। भगतसिंह ने एक बार फिर बटुकेश्वरदत्त को याद दिलाया कि हमें जेल पहुंचते ही भूख हड़ताल आरम्भ कर देनी है। इस प्रकार 14 जून से उन्होंने भूख हड़ताल आरम्भ की।

भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त के आत्मसमर्पण से कुछ ही दिनों भीतर सहारनपुर और लाहौर की बम फैक्ट्रियां पकड़ी गईं और बहुत से क्रान्तिकारी गिरफ्तार कर लिए गए। जून के अन्तिम सप्ताह में भगतसिंह को भी सांडर्स वध काण्ड के सिलसिले में मियांवाली से लाहौर सेंट्रल जेल में भेज दिया गया। भूख हड़ताल के कारण वे इतने कमजोर हो चुके थे कि उन्हें जेल की कोठरी तक पहुंचाने के लिए स्ट्रेचर का उपयोग करना पड़ा।

10 जुलाई, 1929 को लाहौर के मजिस्ट्रेट श्री कृष्ण की अदालत में सांडर्स हत्याकाण्ड का मुकदमा आरम्भ हुआ तो भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त को स्ट्रेचर पर लाते देख दर्शकों में हाहाकार मच गया। उसी दिन बोर्स्टल जेल के उनके साथी अभियुक्तों ने उनकी सहानुभूति में अनशन आरम्भ करने की घोषणा की।

14 जुलाई, 1929 को भगतसिंह ने भारत सरकार के होम मेम्बर को एक पत्र भेजा जिसमें निम्नलिखित मांगें की गईं:

1. राजनीतिक कैदी होने के नाते हमें अच्छा खाना दिया जाना चाहिए। हमारे भोजन का स्तर यूरोपीय कैदियों के भोजन जैसा होना चाहिए।
2. हमें जेलों में सम्मानहीन काम करने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए।
3. बिना किसी रोक-टोक के पुस्तकें और लिखने का सामान लेने की सुविधा होनी चाहिए।
4. कम-से-कम एक दैनिक पत्र प्रत्येक कैदी को मिलना चाहिए।
5. हर-एक जेल में राजनैतिक कैदियों का एक विशेष वार्ड होना चाहिए और एक जेल में रहने वाले सभी राजनैतिक कैदी उस वार्ड में इकट्ठे रखे जाने चाहिए। स्नान के लिए सुविधा एवं अच्छे कपड़े मिलने चाहिएं।

इस प्रार्थना पत्र को भेजने के दूसरे ही दिन पंजाब सरकार ने स्वास्थ्य के आधार पर भोजन में कुछ सुधार किए, पर वे इतने मामूली थे कि भगतसिंह ने उन पर ध्यान भी नहीं दिया। सरकार के लिए यह भूख हड़ताल प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गई थी। यतीन्द्रनाथ दास को जब पहली बार बलपूर्वक नली से दूध दिया गया तो वह सांस की नली में पहुंच गया और वे बेहोश हो गए। इसके बाद उन्हें कभी बलपूर्वक दूध नहीं दिया गया। वास्तव में उन्होंने जीवन की बलि देने का निश्चय करके ही भूख हड़ताल आरम्भ की थी। समाचारपत्र भूख हड़ताल की खबरों से भर रहे थे। नगर-नगर में जुलूसों और जलसों का तांता बंध गया। जनता जाग उठी थी। भगतसिंह को गुप्त क्रान्ति को जनक्रान्ति का रूप देने के अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफलता मिल रही थी। देश भर की दूसरी जेलों के अनेक राजनैतिक कैदियों ने भी उनकी सहानुभूति में अनशन आरम्भ कर दिया था।

भूख हड़ताल में ये सब लोग पानी पीते थे। जेल अधिकारियों ने पानी की जगह दूध भर कर रख दिया, जिससे ये लोग प्यास से विवश हो कर पानी के स्थान पर दूध पी लें। इन लोगों ने इस बात का विरोध किया, परन्तु कोई सुनवाई नहीं हुई। तब इन्होंने घड़े फोड़ने आरम्भ कर दिए। दूध का जो भी घड़ा जेल अधिकारी रखते उसे ही ये लोग फोड़ डालते। यह बड़ी कड़ी परीक्षा थी, पर जेल अधिकारियों को हार माननी पड़ी और फिर कोठरियों में पानी रखवाया गया। तब उन्होंने दूसरा दांव चला। वे कैदियों के आसपास फल मिठाई आदि खाने की चीजें रख देते और स्वयं हट जाते। जेल अधिकारियों का उद्देश्य यह था कि यदि इनमें से किसी भी साथी में कमजोरी आ जाए तो ये लोग सभी को बदनाम भी करें और भूख हड़ताल समाप्त होने की घोषणा भी।

बलपूर्वक दूध देने से भूख हड़ताल करने वालों की अजीब हालत हो जाती थी। चार-पांच दिन बाद भूख बहुत जोर से उभरती थी और भूख हड़ताल जारी रखना और भी कठिन हो जाता। एक तरफ भूख की ज्वाला दूसरी तरफ खाने की चीजें, पर क्रांतिकारी भी अपने निश्चय पर दृढ़ थे। एक साथी अजय घोष ने बलपूर्वक दूध पिए जाने के तुरन्त बाद दो मक्खियां पकड़

कर निगल लीं, जिससे सारा-का-सारा दूध बाहर आ गया। इस तरह वे क्रान्तिकारी वीर मौत से खेल रहे थे।

यतीन्द्रनाथदास की हालत दिन-प्रति-दिन बिगड़ती जा रही थी। बलपूर्वक दूध लेने से उन्होंने आरम्भ से ही इन्कार कर दिया था। 2 सितम्बर, 1929 को सरकार ने जेल इन्क्वायरी कमेटी की स्थापना की। कमेटी के कुछ सदस्य जेल में आए। भगतसिंह भी उनकी बातचीत में शामिल हुए। उनके सामने इस समय मुख्य प्रश्न यतीन्द्रनाथदास को मरने से बचाना था। कमेटी के सदस्य इस बात पर राजी हो गए कि सब लोग भूख हड़ताल तोड़ दें तो सरकार यतीन्द्रनाथदास को छोड़ देगी। भगतसिंह चट्टान की तरह अड़ना जानते थे, तो मोम की तरह पिघलना भी। उनके परामर्श में सबने भूख हड़ताल तोड़ दी। परन्तु यतीन्द्रनाथदास ने अपनी भूख हड़ताल जारी रखी और सरकार अपनी बात से हट गई। तब दो दिन बाद ही फिर भूख हड़ताल आरम्भ हो गई। 2 सितम्बर को भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त की भूख हड़ताल का 81वां दिन था और दूसरे साथियों का 53वां। इस बार भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त के साथ थे अजय घोष, विजयकुमार सिन्हा, शिव वर्मा और जितेन्द्र सान्याल। बाकी सब साथियों ने भगतसिंह के परामर्श पर दुबारा भूख हड़ताल आरम्भ नहीं की।

यतीन्द्रनाथदास तिल-तिल कर घुल रहे थे। उनकी आवाज बन्द हो गई, आंखें मुद गईं, सुनना बन्द हो गया और अन्ततः 13 सितम्बर, 1929 को अपनी भूख हड़ताल के 63वें दिन वे शहीद हो गए। देश का वातावरण क्षुब्ध हो गया। भारत मां का लाड़ला सपूत देश की बलिवेदी पर अर्पित हो गया। यतीन्द्रनाथदास के शहीद होने से जनता उत्तेजित हो उठी थी। इस उफनते हुए वातावरण से सरकार परेशान हो उठी थी और शीघ्र ही भूख हड़ताल की समाप्ति चाहती थी। तभी सरकार द्वारा नियुक्त जेल कमेटी ने अपनी सिफारिशें सरकार के पास भेज दीं। देश के अन्य नेता भी भूख हड़ताल की समाप्ति चाहते थे। भगतसिंह ने अपने साथियों से कहा, "बस इस बार इतना ही काफी है। अब हमें देखना चाहिए कि सरकार इन सिफारिशों के बारे में क्या करती है।" इस पर सब भूख हड़ताल छोड़ने को तैयार हो गए।

भूख हड़ताल के एक सौ चौदहवें दिन 5 अक्तूबर, 1929 को भगतसिंह ने कहा कि हम इस शर्त पर भूख हड़ताल तोड़ने को तैयार हैं कि हम सब को एक साथ ऐसा करने का अवसर दिया जाए। उनकी बात जेल अधिकारियों ने मान ली और फलों के रस के गिलास तैयार किए गए, परन्तु भगतसिंह ने दाल फुलके की मांग की। डाक्टर की राय में इतनी लम्बी भूख हड़ताल के बाद एकदम ऐसी खुराक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होगी। पर भगतसिंह अपनी बात पर अड़े रहे, तब दाल फुलका और चावल मंगाए गए और उन्होंने भूख हड़ताल खत्म की।

स्पेशल मजिस्ट्रेट की अदालत में

10 जुलाई, 1929 को साण्डर्स हत्याकाण्ड का मुकदमा आरम्भ हुआ था। भूख हड़ताल की स्थिति में भी अभियुक्तों को हथकड़ी लगा कर अदालत में लाया जाता था। 17 जुलाई को भगतसिंह ने हथकड़ी लगाने का विरोध किया। हथकड़ी लगाने का तरीका यह था कि एक हाथ पुलिस के सिपाही का होता, एक क्रान्तिकारी अभियुक्त का। मजिस्ट्रेट ने भगतसिंह की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। वे स्ट्रेचर पर थे, सहसा इस तरह उठ खड़े हुए जैसे उनमें नया जीवन आ गया हो। उन्होंने मजिस्ट्रेट को ललकार कर कहा, ''यह हमारे सम्मान के विरुद्ध है कि हमें मामूली सिपाही के साथ बांधा जाए और यह न्याय के भी विरुद्ध है, क्योंकि हम अदालत में आवश्यक बातें नोट नहीं कर पाते। मैं पूछता हूं मजिस्ट्रेट आप हैं या पुलिस अधिकारी? ऐसा ही है तो न्याय का तमाशा क्यो कर रहे हैं? इसे बन्द कीजिए और पुलिस को अपना काम करने दीजिए।''

मजिस्ट्रेट ने भगतसिंह की बात का कोई उत्तर नही दिया और जेल सुपरिटेंडेंट के नाम आदेश दिया कि ये लोग अदालत में ठीक व्यवहार नही करते और इनके विरुद्ध अनुशासन की कार्यवाही की जाए। मुकदमा उसी दिन से स्थगित हो गया और भूख हड़ताल जारी रही।

भूख हड़ताल का पहला मोर्चा जीता जा चुका था। उससे देश के इतिहास में पहली बार राजनैतिक कैदी का व्यक्तित्व स्वीकार किया गया। अब इन लोगों के पास आराम कुर्सियां थीं, खाना खाने के लिए उचित प्रबन्ध था और भी सुविधाएं थी। सबसे बड़ी बात यह थी कि यह मान लिया गया था कि ये देशभक्त हैं और इनका उद्देश्य एक नए समाज के निर्माण के लिए पुराने ढांचे को तोड़ना है।

अब दूसरा मोर्चा आरम्भ हुआ जो यह था कि अदालत में मुकदमे की कार्यवाही देखने और सुनने के लिए अधिक-से-अधिक लोग आएं। अदालत में दर्शकों की भारी भीड़ जमा होने लगी। असेम्बली बम काण्ड के बाद भगतसिंह की लोकप्रियता आकाश को छूने लगी थी। लोग उनको देखने और सुनने के लिए उतावले हो उठे थे, इसलिए अदालत खचाखच भरने लगी। स्थान के अभाव के कारण कुछ लोगों को बाहर ही खड़े रहना पड़ता। वे भगतसिंह को देख न पाते केवल उनकी आवाज ही सुन पाते और इसी से अपने को सौभाग्यशाली मानते।

अजीब मस्ती में झूमते हुए देश के दीवाने अदालत में आते। गर्वभरी मुद्रा से एक बार चारों ओर देखते। इसके बाद नारे लगाते, ''इन्कलाब-जिन्दाबाद।'' फिर राष्ट्रीय गान होता ''वन्देमातरम्'' और वातावरण में गूंज जाता यह गीत:

"सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।
देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है।।
वक्त आने दे बता देंगे तुझे ऐ आसमां।
हम अभी से क्या बताएं, क्या हमारे दिल में है।।

और अन्त में फिर नारा गूंज उठता : "इन्कलाब-जिन्दाबाद।"

अभियुक्तों को कड़ी सजाएं देने के कारण इस मुकदमे में बहुत से अभियुक्त सरकारी गवाह बन गए थे। भगतसिंह ने इनके बयानों का उपयोग लोगों को क्रान्तिकारियों की योजनाएं सिखाने के लिए किया।

जब सरकारी गवाह फणीन्द्रनाथ घोष कटघरे में आए और दल के रहस्य खोलने लगे तो शिव वर्मा ने उनके साथ बहस करने में इस तरह प्रश्न पूछे कि फणीन्द्रनाथ धीरे-धीरे यह बताने के लिए विबश हो गए कि बम कैसे बनता है। अदालत की कार्यवाही प्रतिदिन समाचारपत्रों में छपा करती थी। इस प्रकार नए क्रान्तिकारियों को बम बनाने का तरीका मालूम हो गया।

श्रीमती सुभद्रा जोशी ने जो कि अदालत की कार्यवाही देखने आतीं और क्रांतिकारियों के लिए खाने-पीने का सामान लाया करती थी, अदालत के दृश्य का वर्णन इन शब्दों में किया है : "न्यायाधीश ज्यों ही कुर्सी पर आकर बैठते कमरा राष्ट्रीय गीतों और नारों से गूंज जाता। सरदार और उनके साथी अदालत पर पूरी तरह छा जाते थे। सारा कमरा ही बलिदान के रंग में रंगे होने का दृश्य उपस्थित करता था। अदालत में दोपहर के खाने के समय सम्बन्धियों को अभियुक्तों के साथ मिलने की अनुमति होती थी। निकट के एक कमरे में मिलने वालों को बैठा दिया जाता था। जिस दिन मुझे सरदार भगतसिंह से मिलना होता था उस दिन उनके किसी सम्बन्धी को साथ ले लिया जाता था। उस समय खाने-पीने का सामान देने पर भी कोई प्रतिबन्ध नहीं था परन्तु नियम यह था कि वह सामान वहीं खाना होता था। मैं प्रतिदिन एक-दो ऐसी चीजें ले जाती थी जो जेल में नहीं मिलती और जिन्हें सरदार और उनके साथी बहुत पसन्द करते थे। अनेक बार तो वे स्वयं ही बता दिया करते थे कि कल यह चीजें लाना। दही-बड़े तो सब बड़े चाव से खाते थे। सरदार भगतसिंह को केक और रसगुल्ले बहुत पसन्द थे। सरदार को अपने हाथ से दूसरों को खिलाने का बहुत चाव था। दोपहर के खाने के समय के यह डेढ़-दो घंटे हंसी-मजाक में गुजर जाते थे।

"मृत्यु जिन के सिर पर अपने भयानक रूप में मंडरा रही थी, काले पानी का दण्ड जिनके भाग्य में लिखा जा चुका था उनकी हंसी और अट्टहास देखते ही बनता था। भारतमाता के इन लाड़लों को अदालत के कटघरे में अपनी मृत्यु के साथ खिलवाड़ करते देख कर प्रत्येक व्यक्ति दांतों तले उंगली दबाने के लिए विवश हो जाता था। अदालत की ओर से उनकी उपेक्षा और मुकदमे की ओर से उनकी तटस्थता कुछ ऐसी थी मानो उनके लिए कुछ हो ही न रहा हो। केवल व्यंग के रूप में सरदार भगतसिंह कोई ऐसी फुलझड़ी छोड़ दिया करते थे या कोई ऐसा बढ़िया उलझन भरा प्रश्न उठा देते थे कि मजिस्ट्रेट भी चकरा जाता था।"

यह अदालत उन दिनों लाहौर की सबसे दिलचस्प जगह थी। अदालत का मुख्य द्वार बिलकुल सड़क पर था। स्कूलों-कालेजों के विद्यार्थी छुट्टी होते ही दौड़ कर वहां आ जाते थे और इस तरह अदालत के बाहर भी अच्छी खासी भीड़ हो जाती थी। जब अभियुक्त भीतर कमरे में गाते तो बाहर खड़े लोग भी गाने लगते थे :

कभी वो दिन भी आएगा, कि जब आज़ाद हम होंगे,
ये अपनी ही ज़मीं होगी, यह अपना आसमां होगा।
शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा।

यों ही मुकदमे का मजाक चल रहा था कि एक दिन अचानक सीन बदल गया। सरकारी गवाह जयगोपाल कटघरे में आया तो उसने अभियुक्तों की तरफ देख कर मूछें ऐंठी और व्यंग किया। अभियुक्त दहाड़ उठे—शेम! शेम! प्रेम दत्त, जो अभियुक्तों में सबसे छोटी उम्र के थे, उन्होंने अपना जूता जयगोपाल पर फेंक मारा। मजिस्ट्रेट ने अभियुक्तों के हाथों में हथकड़ी लगाने का हुक्म दिया। इस पर हंगामा मच गया और अदालत मुलतवी हो गई। दूसरे दिन अभियुक्तों ने अदालत में आने से इन्कार कर दिया। पुलिस उन पर टूट पड़ी और पूरी ताकत लगाने के बाद सिर्फ पांच अभियुक्तों को लारी में लाद सकी। लारी बोर्स्टल जेल से सेन्ट्रल जेल के द्वार पर पहुंची, पर पुलिस किसी तरह भी उन्हें लारी से नीचे न उतार सकी। अदालत उस दिन भी मुलतवी हो गई।

अगले दिन पुलिस अफसरों ने वायदा किया कि अदालत में पहुंचने पर हथकड़ियां खोल दी जाएंगी। इस पर सभी अदालत में आ गए, पर वायदा पूरा न हुआ। लंच के समय भगतसिंह ने हंस कर कहा, "यारो खाना तो खा लेने दो।" हथकड़ियां खोल दी गई, पर खाने के बाद अभियुक्तों ने हथकड़ी लगवाने से इन्कार कर दिया। मजिस्ट्रेट इसके लिए तैयार ही था। उसने पहले से तैयार पठानों को इशारा किया। अभियुक्तों की भयंकर पिटाई हुई। भगतसिंह से आठ पठान लिपट गए और खूब पिटाई की, परन्तु इसे काफी नहीं समझा गया। पुलिस और पठान जेल पहुंचे और वहां पर भी अभियुक्त पीटे गए। यहां भी मुख्य निशाना भगतसिंह पर ही था। पुलिस ने पूरी तरह जोर लगा लेने के उपरान्त रिपोर्ट दी :—"इन्हें मार डाला जा सकता है, पर किसी तरह भी अदालत में नहीं लाया जा सकता।"

अदालत में पिटाई के समय बहुत से स्त्री-पुरुष दर्शक थे। तुरन्त समाचार शहर भर में फैल गया और शाम को एक बहुत जोरदार जलसा लाहौर में हुआ। दूसरे दिन देश भर के समाचार इस खूनी खबर से भर गए। अन्ततः सरकार को झुकना पड़ा। हथकड़ी लगाने की पाबन्दी हटाई गई और एक लम्बे समय के बाद मुकदमा आरम्भ हुआ। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, पण्डित मोतीलाल नेहरू तथा अन्य कई नेता मुकदमे के बीच में भगतसिंह और उनके साथियों से मिलने के लिए आए।

जेल सुधार कमेटी ने जेलों में व्यवहार के सम्बन्ध में जो सिफारिशें की थीं, उन्हें लागू करने के लिए नवम्बर 1929 का समय घोषित किया गया था, परन्तु जनवरी 1930 तक कोई भी

कार्यवाही नहीं की गई। 4 फरवरी, 1930 को एक सप्ताह का नोटिस देने के बाद भगतसिंह ने फिर भूख हड़ताल कर दी। सरकार ने घबरा कर एक पत्र प्रकाशित कर नया आश्वासन दिया और भगतसिंह ने भूख हड़ताल तोड़ दी। इसके बाद भी उन्हें कुछ शिकायतें थीं, अत: उन्होंने फिर अदालत में जाना बन्द कर दिया। इस पर 'सिविल मिलिट्री गजट' नामक पत्र में एक वक्तव्य छपा कि अभियुक्तों ने अदालत का बहिष्कार कर दिया है।'' इसे गलत सिद्ध करने के लिए भगतसिंह ने अपनी और बी० के० दत्त की ओर से स्पेशल मजिस्ट्रेट को पत्र लिख कर निम्नलिखित शिकायतों को दूर करने की मांग की :

1. ''हमारे साथी अभियुक्त हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न और दूर-दूर के प्रान्तों के रहने वाले हैं, इसलिए उनको अपने बन्धुओं से भेंट की सुविधा मिलनी चाहिए।
2. मैं स्वयं पूरे समय के लिए वकील नहीं रख सकता, इसलिए मैं चाहता था कि मेरे आदमी अदालत में रहें। लेकिन बिना कोई कारण बताए उन्हें स्वीकृति न दे कर, लाला अमरदास एडवोकेट को जगह दे दी गई। इंसाफ के नाम पर खेले जाने वाले नाटक को हम हरगिज पसन्द नहीं करते, क्योंकि इससे हमें अपनी सफाई पेश करने की कोई सुविधा नहीं मिलती।
3. एक और बड़ी शिकायत हमें अखबार न मिलने की है। हवालाती कैदियों से दण्ड प्राप्त कैदियों जैसा व्यवहार नहीं किया जा सकता। इनको रोज कम-से-कम एक अखबार जरूर मिलना चाहिए।

इन्हीं कारणों से हमने 29 जनवरी, 1930 को अदालत में न जाने की घोषणा की। इन शिकायतों के दूर होते ही हमें अदालत आने में कोई आपत्ति न होगी।''

न्याय का नाटक

भगतसिंह और उनके साथियों ने फिर अदालत में जाना बन्द कर दिया। मुकदमा वही-का-वहीं रुक गया, जबकि सरकार जल्दी-से-जल्दी मुकदमे को खत्म करके अभियुक्तों को दण्ड देना चाहती थी। अंग्रेजी सरकार ने केन्द्रीय असेम्बली में एक बिल पेश किया कि यदि अभियुक्त अपने को अदालत में आने के अयोग्य बना लें तो न्यायाधीशों को अधिकार होगा कि वे उनकी अनुपस्थिति में भी अदालत का काम जारी रखें। इस बिल को विशेषाधिकार द्वारा पास भी करा दिया गया।

1 मई, 1930 को वायसराय लार्ड इर्विन ने लाहौर षड्यन्त्र केस आर्डीनेन्स जारी किया। इसके अनुसार तीन जजों का स्पेशल ट्रिब्यूनल नियुक्त किया गया जिसे अधिकार दिया गया कि अभियुक्तों की अनुपस्थिति में, सफाई के वकीलों और गवाहों के बिना और सरकारी गवाहों की जिरह के अभाव में भी वह मुकदमे का एकतरफा फैसला कर सकता है।

इस ट्रिब्यूनल के तीन सदस्यों में से दो अंग्रेज और एक भारतीय था। 5 मई, 1930 को ट्रिब्यूनल की पहली बैठक हुई। भगतसिंह ने अपने साथियों से कहा यह आर्डीनेन्स इस बात का सबूत है कि हमने मुकदमे में जो रुख अपनाया सरकार उससे परेशान हुई। यह हमारी विजय हुई। उन्होंने आगे कहा कि अब हमें शुद्ध और पूर्ण क्रान्तिकारी व्यवहार का परिचय देना चाहिए और अब अदालत से अपना सम्बन्ध तोड़ लेना चाहिए। इस प्रकार अदालत से असहयोग कर के हम अंग्रेजी हकूमत के खिलाफ एक तरह से अविश्वास का प्रस्ताव पास करेंगे।

कुछ साथी भगतसिंह से सहमत थे, पर कुछ नहीं। उनका दृष्टिकोण यह था कि हमें अदालत की कार्यवाही में हिस्सा लेना चाहिए और ठीक समय पर वैसा ही बयान इस अदालत में भी देना चाहिए जैसा कि भगतसिंह दिल्ली की सेशन जज की अदालत में और हाई कोर्ट में दे चुके हैं। इनकी राय थी कि क्रान्तिकारी पार्टी के पास दूसरा कोई मंच नहीं है, जहां वह अपना दृष्टिकोण जनता के सामने रखे। इसके विपरीत भगतसिंह का दृष्टिकोण यह था कि फांसी और कालेपानी की भयंकर सजाओं के सामने क्रान्तिकारी युवकों की निर्लिप्तता बहुत व्यापक नैतिक प्रभाव डालेगी और नई पीढ़ी को ऐसी निर्भीकता देगी जो अत्यन्त महत्वपूर्ण होगी। फिर भी उन्होंने साथियों की राय को पूरा महत्व दिया और अदालत की कार्यवाही में भाग लेने की बात मान ली।

5 मई, 1930 को लाहौर षड्यन्त्र केस की कार्यवाही ट्रिब्यूनल के सामने आरम्भ हुई। अभी तक मुकदमा उस अदालत में चलता था जो सेण्ट्रल जेल के साथ थी और जिसमें जाने के लिए जेल के भीतर से ही एक छोटा-सा द्वार था। भगतसिंह और दत्त तो वहां थे ही, बोर्स्टल जेल के अभियुक्त भी वहीं लाए जाते थे। अब अदालत मजिस्ट्रेट की नहीं, माननीय जस्टिसों की थी और

जेल में उन्हें बुलाना उनकी शान के विरुद्ध था। इसलिए पुंचहाऊस (लाहौर) में अदालत बनाई गई और वहीं अभियुक्तों को लारी में लाने की व्यवस्था की गई। भगतसिंह और उनके साथी देशभक्ति के गीत गाते, नारे लगाते हुए अदालत में पहुंचे।

भगतसिंह और उनके साथी इस अदालत में भी इन्कलाब-जिन्दाबाद के नारे लगाते और "सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है" गाते हुए आते। नीचे की अदालत की कार्यवाही समाचारपत्रों में छपने के कारण, जनता में चर्चा का विषय बनी थी, जिसमे जनता में इन लोगों को राष्ट्रवीरों और शहीदों का दर्जा मिल रहा था। इसलिए इस अदालत की कार्यवाही के प्रकाशन पर सरकार ने पाबन्दी लगा दी।

12 मई, 1930 को अदालत बैठी तो भगतसिंह ने अपने मधुर-स्वर में गाना आरम्भ किया :—

"वतन की आबरू का पास देखें कौन करता है,
सुना है आज मकतल में हमारा इम्तहां होगा।
इलाही वह भी दिन होगा जब अपना राज देखेंगे,
जब अपनी ही जमीं होगी और अपना आसमां होगा।"

प्रेसीडेंट कोल्डस्ट्रीम को जब इन पंक्तियों का भाव मालूम हुआ तो उन्हें बहुत गुस्सा आया और उन्होंने पुलिस को आदेश दिया कि वह इस गाने को बन्द करवाएं। अभियुक्तों ने और भी जोश के साथ गाना और नारे लगाने आरम्भ किए तो यहां भी वही बात दोहराई गई जो मजिस्ट्रेट की अदालत में हुई थी। पुलिस के द्वारा लातों, घूंसों और डण्डों से अभियुक्तों की पिटाई हुई। भारतीय जस्टिस आगा हैदर कुर्सी से उठकर बाहर जाने को तैयार हुए जिससे न्यायालय में हो रहे इस अन्यायपूर्ण कार्य को न देख सकें। प्रेसीडेंट ने व्यक्तिगत प्रार्थना की कि वे बैठे रहें, तब उन्होंने अपना मुंह अखबार से ढंक लिया ताकि "खुदा से मैं यह तो कह सकूंगा कि अन्याय तो हुआ पर मैंने उसे अपनी आंखों से नहीं देखा।"

केस अगले दिन के लिए स्थगित कर दिया गया। अदालत खाली हो गई और अभियुक्त हटा दिए गए। भगतसिंह के जो साथी अदालत का बहिष्कार करने के लिए उनसे सहमत नहीं थे, वे भी इस घटना के बाद तुरन्त सहमत हो गए और 12 मई 1930 को अदालत में जाने के बाद वे फिर कभी अदालत में नहीं गए। इस प्रकार लाहौर षड्यन्त्र केस चार-पांच दिन चल कर न्याय का नाटक मात्र ही रह गया।

वायसराय ने नये आर्डीनेन्स के द्वारा दूसरा ट्रिब्यूनल बनाया। जस्टिस जी० सी० हिल्टन को अध्यक्ष बनाया गया (जो कि पहले ट्रिब्यूनल में सदस्य थे) और जस्टिस अब्दुल कादिर और जस्टिस जे० के० टैप सदस्य नियुक्त किए गए। तब अभियुक्तों से कहा गया कि उनकी बात मानकर नये ट्रिब्यूनल की स्थापना कर दी गई है, अब वे अदालत में आना आरम्भ करें। भगतसिंह ने उत्तर दिया, "जो लोग हमारे अपमान के लिए जिम्मेदार हैं उनमें जस्टिस हिल्टन भी हैं। वे क्षमायाचना करें तो हम अदालत में आएं।" सरकार और नहीं झुकी और मुकदमे की एक तरफा कार्यवाही आरम्भ हो गई।

मुकदमे की कार्यवाही लगभग 3 महीने तक चलती रही। पुलिस ने चार सौ से अधिक गवाह पेश किए। 26 अगस्त, 1930 को अदालत का काम पूरा हो गया, पर कागजी कार्यवाही अभी करनी थी। दूसरे दिन अभियुक्तों को सन्देश भेजा गया कि अभियुक्त अपने बचाव के लिए स्वयं या वकील के द्वारा जो कुछ कहना चाहें, कह सकते हैं, या अपने गवाह पेश कर सकते हैं। अभियुक्तों में से कोई भी इसके लिए तैयार नहीं हुआ।

अभियुक्तों ने सफाई देने से इन्कार किया। उन दिनों भगतसिंह की मुलाकातें बन्द कर दी गई थीं। भगतसिंह की माता श्रीमती विद्यावती उनसे मुलाकात करने के लिए आईं, उन्हें निराश होकर लौटना पड़ा। भगतसिंह को जब यह मालूम हुआ तो वे बहुत दुखी हुए और उन्होंने अपने छोटे भाई कुलबीर सिंह को 25 सितम्बर को पत्र लिखा :

''आखिर तुम्हें तो मालूम हो चुका था कि जेलवाले मुलाकात की इजाजत नहीं देते, फिर माता जी को क्यों साथ लाए? मैं जानता हूं कि वह इस वक्त सख्त घबरायी हुई हैं, मगर इस घबराहट और परेशानी का क्या फायदा? नुकसान जरूरी है, क्योंकि जब से मुझे मालूम हुआ है कि वे बहुत रो रही हैं, मुझे खुद भी बेचैनी हो रही है। घबराने की कोई बात नहीं और इससे कुछ हासिल भी नहीं होगा। सब लोग हौसले से हालात का मुकाबला करें। आखिर दुनिया में दूसरे लोग भी तो हजारों मुसीबतों में फंसे हुए हैं और फिर लगातार एक साल मुलाकातें कर तबियत तृप्त नहीं हुई तो दो चार और मुलाकातों से भी तसल्ली न हो सकेगी।''

भगतसिंह को हर क्षण पास आती हुई मृत्यु से जरा भी भय नहीं था बल्कि वे तो बेचैनी से उसका इन्तजार कर रहे थे। उन्हें कोई दुःख नहीं था, कोई व्यक्तिगत चिन्ता नहीं थी और मृत्यु के प्रति वे पूर्णतः निर्लिप्त थे, परन्तु मां के आंसुओं की बात सुनकर और उनकी घबराहट के बारे में जान कर उन्हें भी बेचैनी हो उठती थी।

दुनिया भर के मुकदमों के इतिहास में लाहौर षड्यन्त्र केस ही एक ऐसा है जिसमें न अभियुक्त उपस्थित हुए, न उनके गवाह और न वकील ही। अदालत ने स्वयं ही उन पर आरोप लगाए और दण्ड दे दिया। 6 अक्तूबर 1930 को जेल के चारों ओर सशस्त्र पुलिस का पहरा लगा दिया गया और पुलिस को पूरी तरह सावधान कर दिया गया। 7 अक्तूबर, 1930 को ट्रिब्यूनल का एक विशेष सन्देशवाहक जेल में आया और उसने अभियुक्तों को ट्रिब्यूनल का फैसला सुनाया। यह व्यवस्था इसलिए करनी पड़ी कि अभियुक्त जब मुकदमे के लिए ही अदालत में नहीं गए तो फैसला सुनने क्या जाएंगे?

इस फैसले में भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी की सजा, सात को आजन्म कालेपानी की सजा तथा एक को 7 वर्ष और एक को 3 वर्ष की सजा दी गई। शेष को मुक्त कर दिया गया।

फैसला सुनाते ही सरकार ने लाहौर में धारा 144 लगा कर जलसे-जुलूसों पर पाबन्दी

लगा दी थी, फिर भी बिना किसी पूर्व आयोजन के म्युनिस्पिल ग्राउंड में बड़ा भारी जलसा हुआ, जिसमें कड़ी सजा तथा मुकदमे के एकतरफा फैसले की खूब आलोचना की गई। समाचारपत्रों ने विशेष अंक प्रकाशित किए, जिनमें भगतसिंह और उनके साथियों के चित्र छपे थे। सरकार के गुप्तचर हैरान थे कि ये फोटो कब, कहां, किसने लिए और पत्रों को ये कैसे मिले?

8 अक्तूबर, 1930 को लाहौर और देश की जनता जोश से उत्तेजित हो उठी। लाहौर में हड़ताल हुई। स्कूल और कालेज बन्द हो गए। बहुत-सी महिलाएं और विद्यार्थी गिरफ्तार हुए। डी० ए० वी० कालेज के एक प्रोफेसर और 80 विद्यार्थियों ने पुलिस पर धावा बोल दिया। कई जगह लाठी चार्ज हुए। उसी शाम एक बहुत बड़ा जुलूस निकला और नवयुवकों का बड़ा भारी जलसा हुआ। मोरी गेट (लाहौर) के बाहर एक बहुत बड़े जलसे का आयोजन कांग्रेस ने किया, जिसमें बारह हज़ार से अधिक लोग एकत्र हुए। देश के दूसरे नगरों कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपुर, दिल्ली, पटना, लखनऊ आदि की प्रतिक्रिया भी हड़तालों और जुलूसों के रूप में काफी उग्र रही। सभी के मन पर भगतसिंह और साथियों को फांसी की सजा दिए जाने का गहरा दुःख था, परन्तु उनकी बलिदान की भावना का सभी ने अभिनन्दन किया।

काल कोठरी या अध्ययन कक्ष

फांसी की सजा पाने के बाद काल कोठरी में बन्द भगतसिंह क्या करते थे? क्या वे जल्लाद की प्रतीक्षा कर रहे थे? नहीं, जेल में उनका मुख्य कार्य अध्ययन था। बचपन से ही उन्हें अध्ययन का गहरा चाव पैदा हो गया था। जब वे चौथी कक्षा में पढ़ते थे तभी उन्होंने सरदार अजीतसिंह, लाला हरदयाल और सूफी अम्बा प्रसाद द्वारा लिखित पुस्तकें पढ़ डालीं थीं। जेल में मुलाकात के लिए आने वाले किसी व्यक्ति से अगर कुछ लाने के लिए कहते तो वे पुस्तकें ही होतीं। उनके हर-एक पत्र में पुस्तकों की ही मांग रहती थी। जेल विभाग के द्वारा भेजें पत्रों के अतिरिक्त वे गुप्त रूप से भी पत्र भेजते रहते थे। हर-एक पत्र में पुस्तकों की मांग होती थी, यहां तक लिखते कि कौन पुस्तक किस पुस्तकालय से मिलेगी या किस मित्र के पास से। ज्यादातर पुस्तकों के साथ यह भी लिख देते थे कि पुस्तकालय के रजिस्टर में किस पुस्तक का क्या नम्बर है।

भगतसिंह को राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याओं पर आधारित उपन्यास विशेषकर पसन्द आते थे। चार्ल्स डिकेन्स उनका प्रिय लेखक था। रीड द्वारा लिखित 'टेन डेज़ दैट शुक द वर्ल्ड,' रोपशिन द्वारा लिखित 'रशियन डेमोक्रेसी' और मैक्सिविनी द्वारा लिखित 'प्रिंसिपिल्ज आफ फ्रीडम' उन्होंने इन्हीं दिनों पढ़ीं। अप्टन सिन्क्लेयर के 'बोस्टन', 'जंगल', 'आयल' उनके प्रिय उपन्यास थे। गोर्की, मार्क्स, उमर खैयाम, एंजिल्स, आस्कर वाइल्ड, जार्ज बरनार्ड शा के साहित्य का उन्होंने बहुत गहराई से अध्ययन किया। लेनिन और रूसी क्रान्ति का भी उन्होंने बहुत गहरा अध्ययन किया।

वे घंटों किताबों में खोए रहते और फिर पुस्तकें छोड़ कर अपनी कोठरी में इधर-से-उधर घूमने लगते। उनकी कोठरी से अत्यधिक मधुर स्वर गूंजने लगता :

मां, मेरा रंग दे बसन्ती चोला,
इसी रंग में रंग के शिवा ने मां का बन्धन खोला।। मेरा रंग...

जेल के वार्डर दूर से ही इस स्वर को सुन कर कोठरी के आसपास आ जाते, मस्ती में गाते हुए भगतसिंह को देखते और हैरान होते कि भगतसिंह किस धातु के बने हैं। लोग पल-पल जीने के लिए तरसते हैं, पर ये मौत के लिए तड़प रहे हैं। इसी कारण वे भगतसिंह का बहुत आदर करते थे और उनका कोई काम कर सकना अपने जीवन का सौभाग्य मानते थे।

काल कोठरी में भगतसिंह अनेकों कष्ट झेल रहे थे, परन्तु उनको अपने कष्टों की सुध ही कहां थी। हर पल उन्हें राष्ट्र और राष्ट्रवासियों की चिन्ता थी। इसीलिए वे राष्ट्र के नवनिर्माण के मार्ग खोज रहे थे। स्वतंत्रता के बाद कैसी समाज व्यवस्था हो, जिसमें सब लोग सुखी हों और

समान रूप से गौरव का अनुभव करें, इसके लिए उन्होंने कुछ ग्रन्थ लिखे : (1) आत्म-कथा, (2) मौत के दरवाजे पर, (3) समाजवाद का आदर्श तथा (4) स्वाधीनता की लड़ाई में पंजाब का पहला उभार। समाज और राष्ट्र के नवनिर्माण में ये पुस्तकें बहुत ही उपयोगी सिद्ध होतीं, परन्तु जेल से सुरक्षित बाहर भिजवा देने पर भी यह साहित्य प्रकाशित हुए बिना ही नष्ट हो गया।

दिसम्बर 1930 की एक रात को भगतसिंह के साथी शिव वर्मा एक दूसरी जेल में भेजे गए। जेलर ने उनको साथियों से मिलने की सुविधा दी। शिव वर्मा की बेड़ी की झनझनाहट सुन कर भगतसिंह जाग उठे, देखा शिव वर्मा बाहर खड़े हैं। दोनों एक-दूसरे के गले मिले। बातों-ही-बातों में भगतसिंह ने कहा, "क्रान्तिकारी पार्टी में आते समय मैंने सोचा था कि अगर मैं 'इन्कलाब-जिन्दाबाद' का नारा देश के कोने-कोने तक पहुंचा सका तो समझूंगा मेरे जीवन का मूल्य मुझे मिल गया, पर आज तो मैं फांसी की कोठरी में भी अपने उस नारे की गूंज सुन रहा हूं। मैं समझता हूं इस छोटी-सी जिन्दगी का इससे अधिक मूल्य और हो भी क्या सकता है?" अन्त में एक बार फिर दोनों गले मिले और हमेशा-हमेशा के लिए अलग हो गए।

जब भगतसिंह जेल में थे तो लाहौर में पंडित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस का अधिवेशन हो चुका था। कांग्रेस ने गांधीजी को अपने आन्दोलन की बागडोर सौंप दी थी और उन्होंने नमक सत्याग्रह आरम्भ कर दिया था। सारे देश में नमक कानून खुलेआम तोड़ा जा रहा था। धड़ा-धड़ जलसे हो रहे थे, जुलूस निकल रहे थे और तेजी से गिरफ्तारियां भी हो रही थीं। गोलियां भी चलीं, लोग मरे भी, फिर भी लोगों का उत्साह ज्यों-का-त्यों था। गांधीजी और देश के दूसरे बड़े नेता गिरफ्तार कर लिए गए।

इधर क्रान्तिकारी दल भी एक के बाद एक धमाके करने में जुटा हुआ था। बंगाल के महान क्रान्तिकारी श्री सूर्यसेन के नेतृत्व में चटगांव शस्त्रागार लूटा गया। बम के द्वारा वाइसराय की रेलगाड़ी को उड़ाने का प्रयास क्रान्तिकारी यशपाल ने किया। नवयुवक हरिकृष्ण ने पंजाब के गवर्नर पर गोली चलाई। सांडर्स वध और असेम्बली बम काण्ड आदि मुकदमों से देश की नई पीढ़ी और अधिक जागरूक हो उठी थी। भगतसिंह को फांसी की सजा दिए जाने से जनता और भड़क उठी। जगह-जगह जुलूस निकाले गए, जलसे हुए। लोग जोश के साथ भगतसिंह की वीरता का बखान करते, उनकी जय बोलते और उनका नारा लगाते : 'इन्कलाब-जिन्दाबाद'।

जलसे-जुलूसों के साथ देश भर में हस्ताक्षर आन्दोलन आरम्भ हो गया और भगतसिंह के जीवन की रक्षा के लिए लाखों-हस्ताक्षरों से भरे अनुरोधपत्र और हजारों तार वाइसराय को भेजे गए। नगर-नगर में ऐसे परचे छपे और बंटे जिनमें भगतसिंह को फांसी से बचाने का अनुरोध था। महाराजा बीकानेर और दूसरे कई राजाओं ने वाइसराय से प्रार्थना की और इंगलैंड की पार्लियामेंट के अनेक सदस्यों ने भी वाइसराय को तार दिए कि वे भगतसिंह के जीवन की रक्षा करें। वास्तव में भगतसिंह इतनी प्रसिद्धि पा चुके थे कि हर आदमी उन्हें अपने बेटे की भांति और हर बहन अपने भाई की भांति प्यार करती थी और देश का हर नागरिक उनके जीवन को बचाना चाहता था।

एक सन्देश, एक वसीयत

25 जनवरी, 1931 को वाइसराय ने गांधीजी तथा कांग्रेस के कुछ नेताओं को जेल से छोड़ दिया। कांग्रेस और सरकार के बीच समझौते की बातचीत होने लगी। कांग्रेस कार्यसमिति ने समझौते के पूर्ण अधिकार गांधीजी को सौंप दिए। देश के वातावरण में आशा की एक किरण फूटी कि कांग्रेस और अंग्रेजी सरकार में कोई फैसला होने वाला है और उससे भगतसिंह और उनके साथियों का जीवन भी बच जाएगा। परन्तु 4 मार्च, 1931 को जब समझौता हुआ तो जनता को निराश होना पड़ा।

2 फरवरी, 1931 को भगतसिंह ने देश के युवकों के नाम एक सन्देश लिखकर भेजा, उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं :—

"इस समय हमारा आन्दोलन अत्यन्त महत्वपूर्ण परिस्थितियों में से गुजर रहा है। एक साल के कठोर संग्राम के बाद गोलमेज कान्फ्रेन्स ने हमारे सामने शासन विधान में परिवर्तन के कुछ निश्चित सुझाव दिए हैं और कांग्रेस के नेताओं को निमंत्रण दिया है कि वे आकर शासन-विधान तैयार करने के काम में मदद दें। कांग्रेस के नेता इस हालत में आन्दोलन को स्थगित कर देने के लिए उद्यत दिखाई देते हैं। वे लोग आन्दोलन स्थगित **करने के** हक में फैसला करेंगे या उसके खिलाफ यह बात हमारे लिए महत्व नहीं रखती। यह बात निश्चित है कि वर्तमान आन्दोलन का अन्त किसी न किसी प्रकार के समझौते के रूप में होगा। यह दूसरी बात है कि समझौता जल्दी से हो या देर से।

"वस्तुत: समझौता कोई ऐसी निन्दनीय वस्तु नहीं है जैसा कि साधारणतया हम लोग समझते हैं, बल्कि वह राजनैतिक संग्रामों का एक अंग होता है। कोई भी कौम जब किसी अत्याचारी शासन के विरुद्ध खड़ी होती है, तो स्वाभाविक है कि वह प्रारम्भ में असफल हो, और अपने लम्बे संघर्ष के बीच इस प्रकार के समझौतों के द्वारा कुछ राजनैतिक सुधार हासिल करती जाए। परन्तु वह अपनी चढ़ाई की आखिरी मंजिल तक पहुंचते-पहुंचते अपनी ताकत को इतना संगठित और दृढ़ बना लेती है कि दुश्मन उसके आखिरी हमले के सामने चकनाचूर हो जाता है। ऐसा भी होता है कि उस वक्त उसे दुश्मन के साथ कोई समझौता कर लेना पड़े।

"जो बात मैं बताना चाहता हूं वह यह है कि समझौता भी एक ऐसा हथियार है जिसे राजनैतिक संघर्ष के बीच में कदम-कदम पर इस्तेमाल करना आवश्यक हो जाता है। यह इसलिए कि एक कठिन लड़ाई से थकी हुई कौम को थोड़ी देर के लिए आराम मिल सके और वह अगले युद्ध के लिए अधिक ताकत के साथ तैयार हो सके। इन सारे समझौतों के बावजूद हमें अपने आदर्श को नही भूलना चाहिए।

"भारत की वर्तमान लड़ाई ज्यादातर मध्य श्रेणी के लोगों के बलबूते पर लड़ी जा रही है, जिसका लक्ष्य बहुत सीमित है। कांग्रेस दुकानदारों और पूंजीपतियों के माध्यम से इंग्लैंड पर अधिक दबाव डालकर कुछ अधिकार लेना चाहती हैं, परन्तु जहां तक देश के करोड़ों मजदूरों और किसानों का सम्बन्ध है, उनका उद्धार इतने में नहीं हो सकता। यदि देश की लड़ाई लड़नी हो तो मजदूरों, किसानों और सामान्य जनता को आगे लाना होगा, उन्हे लड़ाई के लिए संगठित करना होगा। नेता उन्हें आगे लाने के लिए अभी तक कुछ नही कर सके हैं। इन किसानों को विदेशी हकूमत के जुए के साथ-साथ भूमिपतियों के जुए से भी उद्धार पाना है, परन्तु कांग्रेस का उद्देश्य यह नही है। इसलिए मैं कहता हूं कि कांग्रेस के लोग पूर्ण क्रान्ति नहीं चाहते। मैं यह भी कहता हूं कि कांग्रेस का आन्दोलन किसी न किसी समझौते या असफलता के रूप में खत्म हो जाएगा।

"इन सब बातों पर विचार करके मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि सबसे पहले हमें सारा चित्र साफ तौर पर अपने सामने अंकित कर लेना चाहिए। मैं यह मानता हूं कि समझौते का अर्थ कभी आत्मसमर्पण या पराजय स्वीकार करना नहीं, किन्तु एक कदम आगे बढ़ना और फिर कुछ आराम करना है। साथ ही यह भी समझ लेना चाहिए कि समझौता इससे अधिक और कुछ भी नहीं है। वह अन्तिम लक्ष्य और हमारे लिए अन्तिम विश्राम का स्थान नही है।"

इसी सन्देश में उन्होंने नए शासन विधान को परखने के लिए तीन कसौटियां दी :

(1) शासन की जिम्मेदारियां कहां तक भारतवासियों को सौंपी जाती हैं ?

(2) शासन विधान को चलाने के लिए किस प्रकार की सरकार बनाई जाती है और उसमें हिस्सा लेने का आम जनता को कहां तक मौका मिलता है ? और

(3) भविष्य में उससे क्या आशाएं की जा सकती हैं और उस पर कहां तक प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं ?

जनता को कैसे जागृत और कैसे संगठित किया जाए इसका निर्देशन देने के बाद भगतसिह कहते हैं : "यह बात प्रसिद्ध है कि मैं आतंकवादी रहा हूं, परन्तु मैं आतंकवादी नही हूं। मैं एक क्रान्तिकारी हूं, जिसके कुछ निश्चित विचार, निश्चित आदर्श और एक लम्बा कार्यक्रम है। मुझे यह दोष दिया जाएगा (जैसा कि लोग रामप्रसाद बिस्मिल को भी देते हैं) कि फांसी की कालकोठरी में पड़े रहने से मेरे विचारों में भी कोई परिवर्तन आ गया है, परन्तु ऐसी बात नहीं है। मेरे विचार अब भी वही हैं और मेरा लक्ष्य अब भी वही है, जो जेल के बाहर था।

"मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि हम बम और पिस्तौल से कोई लाभ प्राप्त नही कर सकते। यह बात हिन्दुस्तान सोशलिस्ट पार्टी के इतिहास से आसानी से मालूम हो जाती है। केवल बम फेंकना न सिर्फ व्यर्थ है, परन्तु बहुत बार हानिकारक भी है। उसकी आवश्यकता किन्ही खास अवस्थाओं में ही पड़ा करती है। हमारा मुख्य लक्ष्य मजदूरों और किसानों का संगठन होना चाहिए। सैनिक विभाग (दल का) युद्ध सामग्री को किसी खास मौके के लिए केवल संग्रह करता रहे। यदि युवक इसी प्रकार प्रयत्न करते जाएंगे तब एक साल में स्वराज्य तो नही होगा, किन्तु भारी कुरबानी की कठिन परीक्षा में से गुजरने के बाद वे अवश्य विजयी होंगे। इन्कलाब - ज़िन्दाबाद।"

वास्तव में यह सन्देश राष्ट्र की नई पीढ़ियों के नाम भगतसिंह की वसीयत है। राजनैतिक क्षेत्र में वे किस गहराई तक उतरे थे, इसका भी यह प्रमाण है। ब्रिटिश सरकार ने क्रान्तिकारियों को बम-पिस्तौल चलाने वाले, आतंकवादी कहा और उन्हें कुचल डालने में कोई कसर बाकी न रखी। प्रजातन्त्र और समाजवादी समाज उनकी कल्पना में एक जीवंत राष्ट्र के मूल तत्व थे। राष्ट्र के साथ उनके एक प्राण होने का जीवित प्रमाण भी थे। यह वसीयत भारत की वर्तमान पीढ़ी और भविष्य की पीढ़ियों की अमानत है, इसलिए कि इसमें भगतसिंह का साकार चित्र हमारे सामने आता है। इस वसीयत को पढ़कर कौन कहेगा कि वे आतंकवादी थे ?

अन्तिम मुलाकात और उसके बाद

3 मार्च, 1931 को भगतसिंह अपने परिवार वालों से अन्तिम बार मिले। उस दिन की मुलाकात में माता-पिता थे, दादाजी थे, चाची थीं और दो छोटे भाई, कुलबीरसिंह एवं कुलतारसिंह थे। सभी जानते थे कि भगतसिंह अब कुछ ही दिनों के मेहमान हैं, इसलिए सभी के मन अत्यधिक दुःखी थे। आंसू उमड़-उमड़ कर आ रहे थे। भगतसिंह के दादा सरदार अर्जुनसिंह, जिन्होंने बचपन में ही भगतसिंह को क्रान्ति की दीक्षा दी थी और उन्हें देश की बलिवेदी पर अर्पित करने की प्रतिज्ञा की थी, आज बहुत दुःखी थे। वे भगतसिंह के पास आए, बड़े प्यार से उनके सिर पर हाथ फेरा, कुछ बोलने के लिए उनके होंठ हिले, पर भीतर दुःख इतना गहरा था कि गले से आवाज़ न निकल सकी। वे चुपचाप दूर जा खड़े हुए और उनके आंसू बहते रहे।

हालांकि मुलाकात के लिए आए सभी लोग बहुत दुःखी थे, फिर भी भगतसिंह सदैव की भांति पूर्णतः शान्त एवं प्रसन्न थे। उन्होंने अपना वज़न बढ़ जाने की खबर परिवार वालों को दी। सबको विश्वास था कि अभी और भी मुलाकातें होंगी जबकि भगतसिंह को विश्वास था कि यह अन्तिम मुलाकात है। उन्होंने सबसे अलग-अलग बातें कीं और बातों ही बातों में सबको प्रसन्न करने की कोशिश भी की। सबको धीरज दिया और अन्त में अपनी माताजी को पास बुला कर हंसते-हंसते कहा, ''लाश लेने आप मत आना, कुलबीर को भेज देना। कहीं आप रो पड़ीं तो लोग कहेंगे भगतसिंह की मां रो रही है।'' इतना कह वे इतने जोर से हंसे कि सब हैरानी से उनकी ओर देखने लगे।

मुलाकात का समय समाप्त हुआ और सब चले गए। भगतसिंह ने उसी दिन दो पत्र कुलबीरसिंह और कुलतारसिंह के नाम लिखे। भगतसिंह को अपने जीवन से कोई मोह नहीं था। उनके रक्त की एक-एक बूंद मातृभूमि के लिए थी। बीतता हुआ हर क्षण बलिदान के क्षण को निकट ला रहा था और वे पूर्ण प्रसन्नता एवं पूर्ण उत्सुकता से उस क्षण की प्रतीक्षा कर रहे थे। इसका यह अर्थ नहीं कि भगतसिंह को अपने परिवार से कोई लगाव नहीं था। उन्हें सबके साथ पूरा स्नेह था और वे अपने उत्तरदायित्व को भी पूरी तरह महसूस करते थे। अन्तिम मुलाकात के दिन लिखे दोनों पत्रों से भगतसिंह के हृदय का स्पष्ट चित्र हमारे सामने आता है।

अज़ीज़म कुलबीरसिंह,

तुमने मेरे लिए बहुत कुछ किया। मुलाकात के वक्त अपने खत के जवाब में कुछ लिख देने के लिए कहा। कुछ अलफाज़ लिख दूं और बस। देखो मैंने किसी के लिए कुछ न किया—तुम्हारे लिए भी कुछ नहीं। बिल्कुल मुसीबत में छोड़कर जा रहा हूं, मगर भाई हौसला रखना, मुसीबत में भी कभी मत घबराना। इसके सिवा और क्या कह सकता हूं। अमेरिका जा सकते तो बहुत अच्छा होता, मगर अब तो वह भी असम्भव मालूम होता है। आहिस्ता-आहिस्ता मेहनत से पढ़ते

जाना। जहां तक हो सके मुहब्बत से सब लोग गुज़ारा करना। इसके सिवाय और क्या कहूं?

जानता हूं आज तुम्हारे दिल के अन्दर गम का समुद्र उमड़ रहा है। भाई तुम्हारी बात सोचकर मेरी आंखों में आंसू आ रहे हैं, मगर किया क्या जाए? हौसला करना मेरे अजीज, मेरे बहुत प्यारे भाई, ज़िन्दगी बड़ी सख्त है और दुनिया बड़ी बेरहम। सिर्फ मुहब्बत और हौसले से ही गुजारा हो सकेगा। कुलतार की तालीम की फिकर भी तुम ही करना। बड़ी शर्म आती है और अफसोस के सिवा मैं कर ही क्या सकता हूं। अजीज़ भाई अलविदा।

तुम्हारा शुभचिन्तक
भगतसिंह

भगतसिंह ने उसी दिन दूसरा पत्र अपने छोटे भाई कुलतारसिंह को, जिनकी आयु उस समय 12 वर्ष थी, लिखा :—

अजीज कुलतार,

आज तुम्हारी आंखों में आंसू देखकर बहुत दुख हुआ। आज तुम्हारी बातों में बहुत दर्द था। तुम्हारे आंसू मुझ से सहन नहीं होते। हिम्मत से शिक्षा प्राप्त करना और सेहत का ख्याल रखना। हौसला रखना और क्या कहूं :

उसे फिक्र है हरदम नया तर्जे जफा क्या है,
हमें यह शौक देखें सितम की इन्तहा क्या है।
दहर से क्यों खफा रहें चर्ख का क्यों गिला करें,
सारा जहां अदूसही आओ मुकाबिला करें!!
कोई दम का मेहमां हूं ए एहले महफिल,
चरागे सहर हूं बुझा चाहता हूं।
मेरी हवा में रहेगी ख्याल की बिजली,
यह मुश्ते खाक है फानी रहे न रहे!!

अच्छा रुखसत। खुश रहो एहले वतन हम तो सफर करते हैं। हौसले से रहना। नमस्ते।

तुम्हारा भाई
भगतसिंह

अर्थात् "अरुणोदय हो रहा है तब नियति का मार्ग कौन अवरुद्ध कर सकता है? यदि सारा संसार भी हमारे विरुद्ध हो जाए तब भी चिन्ता किस बात की है? मेरे जीवन का अन्त आ गया है। जिस प्रकार भोर होते ही दीपों की लौ बुझ जाती है उसी प्रकार उषाकाल होते-होते मैं विलीन हो जाऊंगा। हमारी आस्था तथा हमारे विचार सारे संसार को बिजली की एक कड़क के समान चौंका कर आलोकित कर देंगे। इस बात की क्या चिन्ता है यदि एक मुट्ठी भर धूल, धूल में मिल जाती है।"

जिस ट्रिब्यूनल ने भगतसिंह और उनके साथियों को फांसी की सजा दी थी, अपना काम पूरा कर वह समाप्त हो गया था और ट्रिब्यूनल के सदस्य भारत से बाहर चले गए थे। भगतसिंह के पिता सरदार किशनसिंह ने हाईकोर्ट में प्रश्न उठाया कि जो अदालत फांसी का आदेश देती है वही फांसी की तारीख निश्चित कर सकती है। क्योंकि फांसी देने वाली अदालत बिना फांसी की

तारीख निश्चित किए भंग हो गई है, इसलिए कोई दूसरी अदालत फांसी की तारीख निश्चित नहीं कर सकती। यह प्रश्न इतना टेढ़ा था कि हाईकोर्ट के जज भी इस पर एकदम कुछ उत्तर नहीं दे सके और उन्होंने इस विषय को विचाराधीन रख लिया। देश भर में इस समय फांसी रोकने की मांग थी। इस स्थिति में यह सोचा गया कि यदि इस समय वाइसराय को फांसी रोकने का आदेश देने के लिए एक अच्छा बहाना दिया जाए तो सफलता निश्चित है। यह बात दया की प्रार्थना से ही हो सकती थी। पर प्रश्न यह था कि क्या भगतसिंह इसके लिए तैयार होंगे? भगतसिंह के कानूनी सलाहकार प्राणनाथ मेहता भगतसिंह से मिलने गए। कुछ देर इधर-उधर की बातें करके वे अपनी असली बात पर आए और बोले कि तुम लोगों का जीवन देश की धरोहर है और देश की जनता चाहती है कि तुम तीनों के जीवन को बचाया जाए। इसका एक ही उपाय सूझता है कि वाइसराय के नाम एक दया का प्रार्थना पत्र भेजा जाए।

तीनों के चेहरे एकाएक गम्भीर हो गए। सुखदेव और राजगुरु नाराजगी के साथ कुछ कहना चाहते थे, पर भगतसिंह ने उन्हें इशारे से चुप कर दिया और शान्त स्वर में पूछा, "किस तरह की दया की प्रार्थना तुम चाहते हो?" प्राणनाथ मेहता ने कहा, "मुझे गलत मत समझो, मेरे दोस्त, हम लोग ऐसी कोई बात नहीं चाहते, जिससे तुम्हारी बहादुरी में बट्टा लगे। आज रात को हमारी कमेटी की बैठक में एक ड्राफ्ट बनाया जाएगा जो मैं कल सुबह तुम लोगों के पास लेकर आऊंगा।"

राजगुरु और सुखदेव गुस्से से तमतमा रहे थे, पर भगतसिंह ने उन्हें बोलने नहीं दिया और मुस्कराते हुए कहा, "दया की प्रार्थना तो हम भी तैयार कर सकते हैं, मगर हमारे मुकदमे ने तुम्हें एक कामयाब वकील जरूर बना दिया है। याद रखना दोस्तों का यह एहसान मत भूलना।

दूसरे दिन 20 मार्च, 1931 को जब श्री प्राणनाथ मेहता अपना ड्राफ्ट लेकर पहुंचे, जिसे पांच आदमियों ने रात भर जागकर तैयार किया था, तो उन्हें देखकर भगतसिंह जोरों से हंस पड़े। बोले, "यार रहने दो अपना ड्राफ्ट, हम लोगों ने तो दया की प्रार्थना भेज भी दी है। बात यह है कि देर करना ठीक नहीं था। कुछ देर यों ही छेड़छाड़ रही और तब भगतसिंह ने अपना वह ड्राफ्ट उन्हें दिखाया जो सचमुच उन्होंने उनके आने से पहले ही पंजाब के गवर्नर को भेज दिया था। उस महत्वपूर्ण दया की प्रार्थना के कुछ अंश इस प्रकार हैं:

दया की प्रार्थना (मर्सी अपील)

हमारे विरुद्ध सबसे बड़ा दोष यह लगाया गया है कि हमने सम्राट जार्ज पंचम के विरुद्ध संघर्ष किया है। न्यायालय के इस निर्णय से दो बात स्पष्ट हो जाती हैं—प्रथम यह कि अंग्रेज जाति और भारतीय जनता के मध्य एक संघर्ष चल रहा है, दूसरी यह कि हमने निश्चित रूप से उस युद्ध में भाग लिया है।

हम यह कहना चाहते हैं कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह लड़ाई तब तक जारी रहेगी जब तक कि कुछ शक्तिशाली व्यक्तियों का भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर एकाधिकार बना रहेगा। चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज पूंजीपति हों या अंग्रेजी शासक या सर्वथा भारतीय ही हों, उन्होंने आपस में मिलकर लूट मचा रखी है। चाहे शुद्ध भारतीय पूंजीपतियों के द्वारा ही निर्धनों का खून चूसा जा रहा हो, तो भी इस स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

बहुत सम्भव है कि युद्ध भयंकर रूप धारण कर ले। यह उस समय तक समाप्त नहीं होगा, जब तक कि समाज का वर्तमान ढांचा समाप्त नहीं हो जाता, प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन या क्रान्ति नहीं हो जाती, और मानव सृष्टि में एक नवीन युग का सूत्रपात नहीं हो जाता।

जहां तक हमारे भाग्य का सम्बन्ध है, हम जोरदार शब्दों में आपसे यह कहना चाहते हैं कि आपने हमें फांसी पर लटकाने का निर्णय कर लिया है, आप ऐसा करेंगे ही, आपके हाथों में शक्ति है और आपको अधिकार भी प्राप्त है। परन्तु इस प्रकार आप जिसकी लाठी उसकी भैंस वाला सिद्धांत ही अपना रहे हैं और आप उस पर कटिबद्ध हैं। हमारे अभियोग की सुनवाई इस वक्तव्य को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि हमने कभी कोई प्रार्थना नहीं की और अब भी हम आपसे किसी दया की प्रार्थना नहीं करते। हम केवल आप से यह प्रार्थना करना चाहते हैं कि आपकी सरकार के ही एक न्यायालय के निर्णय के अनुसार हमारे विरुद्ध युद्ध जारी रखने का अभियोग है, इस स्थिति में हम युद्धबन्दी हैं, अतः इस आधार पर हम आपसे मांग करते हैं कि हमारे प्रति युद्धबन्दियों जैसा ही बर्ताव किया जाए और हमें फांसी देने की बजाय गोली से उड़ा दिया जाए।''

जिसने आत्म प्रेरणा से स्वयं को आग में झोंका हो, वह झुलसने से क्या डरता ? ऐसी मर्सी अपील (दया-प्रार्थना) की विश्व के इतिहास में कोई तुलना नहीं; ऐसी अपील, जिसने अपने शुभेच्छुकों द्वारा उनकी जान बचाने के लिए किसी भी प्रकार की सम्भावित अपील के मार्ग बन्द कर दिए। एक अनोखी अपील, सरकार-परस्त कायरों के मुंह पर जोरदार तमाचा और ब्रिटिश सरकार के तथाकथित न्याय पर करारी चोट और सच्चे क्रान्तिकारियों को अपने आदर्शों पर मर मिटने एवं राष्ट्रहित के समक्ष अपने निजी सुखों को लाखों बार बलि कर देने का एक और प्रमाण भी।

हाईकोर्ट में प्रस्तुत जिस प्रश्न से फांसी रुकी हुई थी, उस पर विचार आरम्भ हो गया था, इसलिए यह साफ दिखने लगा था किसी भी समय फांसी के आदेश आने ही वाले हैं। एक दूसरे कैदी बाबा सोहनसिंह भकना (भारतीय गदर पार्टी के नेता) ने एक दिन भगतसिंह से पूछा, ''भगतसिंह तुम्हारे कोई रिश्तेदार मिलने नहीं आए ?''

भगतसिंह ने उत्तर दिया, ''बाबाजी मेरा खून का रिश्ता तो शहीदों के साथ है जैसे खुदीराम बोस और करतारसिंह सराबा। हम एक ही खून के हैं। हमारा खून एक ही जगह से आया है और एक ही जगह जा रहा है। दूसरा रिश्ता आप लोगों से है, जिन्होंने हमें प्रेरणा दी और जिनके साथ कालकोठरियों में हमने पसीना बहाया है। तीसरे रिश्तेदार वे होंगे, जो इस खून-पसीने से तैयार की हुई जमीन में नई पीढ़ी के रूप में पैदा होंगे और इस मिशन को आगे बढ़ाएंगे। इनके सिवा अपना और कौन रिश्तेदार है, बाबाजी ?''

फांसी के तख्ते पर

23 मार्च, 1931 की सुबह 'ट्रिब्यून' अखबार पढ़ते समय भगतसिंह का ध्यान पुस्तक-परिचय स्तंभ पर जा टिका जिसमें रूस में समाजवाद के संस्थापक 'लेनिन' के जीवनचरित्र की आलोचना छपी थी। भगतसिंह इस जीवनचरित्र को पढ़ने के लिए बेचैन हो उठे। उन्होंने जेल के वार्डर द्वारा अपने मित्र, प्राणनाथ मेहता वकील के पास गुप्तपत्र भेजा, जिसमें लिखा था, "अन्तिम वसीयत के बहाने तुरन्त मुझ से मिलो। पर लेनिन का जीवनचरित्र लाना न भूलना।"

इधर यह सब हो रहा था, उधर हाईकोर्ट ने सरदार किशनसिंह का प्रार्थनापत्र अस्वीकार कर दिया और सरकारी वकील कार्डन नौड ने हाईकोर्ट से फांसी देने का हुक्म भी हाथोंहाथ ले लिया। इस बात को पूरी तरह गुप्त रखा गया था, फिर भी यह खबर चारों ओर फैल गई और यह स्पष्ट दीखने लगा था कि कल सुबह फांसी होगी।

उसी दिन अन्तिम मुलाकात के लिए भगतसिंह के परिवार के लोग आए, परन्तु जेल अधिकारियों ने यह कहकर कि केवल रक्त-सम्बन्धी (यानी माता-पिता, भाई-बहन) ही मिल सकते हैं, मुलाकात करने में बाधा उपस्थित की। भगतसिंह के माता-पिता यह कैसे स्वीकार कर सकते थे कि दादा-दादी और चाचियां अन्तिम बार भगतसिंह को न देखें? जेल अधिकारी सब को मिलने देने के लिए तैयार नहीं हुए, तो भगतसिंह के माता-पिता बिना अन्तिम मुलाकात किए ही लौट गए।

जब बाहर यह सब हो रहा था तभी प्राणनाथ मेहता भगतसिंह की कालकोठरी में पहुंचे। उस दिन की भेंट के बारे में प्राणनाथ मेहता ने स्वयं लिखा है, "उस दिन मैं लगभग एक घण्टा भगतसिंह की कोठरी में उनके पास रहा। मैं बहुत बार उसी स्थान पर उनसे मिल चुका था। उनकी भूखहड़तालों और पुलिस के साथ तथा अदालत के भीतर उनके साहसिक संघर्ष को अपनी आंखों से देख चुका था, परन्तु मैंने यह कभी अनुभव नहीं किया था कि वे इतने बहादुर, साहसी और महान हैं। मैं जानता था और वे भी जानते थे कि मृत्यु का क्षण निकट आ रहा है। घड़ी की सुइयां फांसी के समय की ओर तेजी से बढ़ रही हैं, पर इसके बावजूद मैंने उन्हें प्रसन्न मुद्रा में पाया। उनके चेहरे पर रौनक ज्यों की त्यों थी और जब मैं उनके पास पहुंचा, वे पिंजरे में बन्द शेर की तरह टहल रहे थे।

"मेरे कोठरी में पैर रखते ही, उन्होंने अपने खास लहजे में पूछा, आप वह पुस्तक ले आए? मैंने 'क्रान्तिकारी लेनिन' उन्हें थमा दी। उसे देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए।

"मैंने कहा—देश के लिए अपना सन्देश दीजिए। उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया—'साम्राज्यवाद-मुर्दाबाद, इन्कलाब-जिन्दाबाद'।

"मैंने उनकी मनोभावनाओं को जानने के लिये पूछा, आज आप कैसा महसूस कर रहे हैं? उनका संक्षिप्त उत्तर था—'मैं बिलकुल प्रसन्न हूं'।

"मैंने पूछा, आपकी अन्तिम इच्छा क्या है? उनका उत्तर था, बस यही कि फिर जन्म लूं और मातृभूमि की और अधिक सेवा करूं। उन्होंने मुकदमे में दिलचस्पी लेने वाले नेताओं के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की और अपने मित्रों, खासकर फरार साथियों, के लिए शुभकामनाएं दीं। अजीब बात यह थी कि मृत्यु के वातावरण से मेरी आवाज में कंपकंपी थी, पर भगतसिंह तन मन से पूर्ण स्वस्थ थे। वे इतने निश्चिन्त थे कि मृत्यु के प्रति उनकी निर्भीकता और निर्लिप्तता को देख ऐसा लगा कि वह मनुष्य नहीं कोई देवता हैं।

"लाहौर सेन्ट्रल जेल की चौदह नम्बर बैरक में कुछ और क्रान्तिकारी साथी थे। उसी दिन दोपहर को उन्होंने भगतसिंह के पास एक लिखित संदेश भेजा: सरदार, आप एक सच्चे क्रान्तिकारी की हैसियत से यह बताएं कि क्या आप चाहते हैं कि आपको बचा लिया जाए? इस आखिरी वक्त में भी शायद कुछ हो सकता है। जेल के बाहर जनता की भीड़ उमड़ पड़ी थी, उत्तेजित जनसमूह इस तैयारी में था कि कल सुबह होने के पूर्व ही जेल की दीवार तोड़कर भगतसिंह और साथियों को जेल से निकाल लें। भगतसिंह ने उस पर्चे को पढ़ा, एक मुस्कुराहट उनके चेहरे पर बिखर गई और फिर गम्भीर हो उन्होंने निम्नलिखित पर्चा चौदह नम्बर बैरक के कैदियों को लिख भेजा:

'जिन्दा रहने की ख्वाइश कुदरती तौर पर मुझ में भी होनी चाहिए। मैं इसे छिपाना नहीं चाहता, लेकिन मेरा ज़िन्दा रहना एक शर्त पर निर्भर करता है।

'मेरा नाम भारतीय क्रान्तिकारी पार्टी का मध्यबिन्दु बन चुका है और भारतीय क्रान्तिकारी दल के आदर्शों और बलिदानों ने मुझे बहुत ऊंचा उठा दिया है, इतना ऊंचा कि जिन्दा रहने की सूरत में इससे ऊंचा मैं हरगिज नहीं हो सकता। आज मेरी कमजोरियां लोगों के सामने नहीं हैं। अगर मैं फांसी से बच गया तो वह जाहिर हो जाएंगी और क्रान्ति का निशान मद्धिम पड़ जाएगा या शायद मिट ही जाए। लेकिन मेरे दिलेराना ढंग से हंसते-हंसते फांसी पाने की सूरत में भारतीय माताएं अपने बच्चों के भगतसिंह बनने की आरज़ू किया करेंगी और देश की आजादी के लिए बलिदान होने वालों की तादाद इतनी बढ़ जाएगी कि क्रान्ति को रोकना साम्राज्यवाद की सम्पूर्ण शैतानी राक्षसी शक्तियों के वश की बात न रहेगी।

'हां, एक ख्याल आज भी चुटकी लेता है। देश और इन्सानियत के लिए जो कुछ करने की हसरतें मेरे दिल में थीं, उनका हजारवां हिस्सा भी पूरा न कर पाया। अगर जिन्दा रह सकता तो शायद इनको पूरा करने का मौका मिलता और मैं अपनी हसरतें पूरी कर सकता।

'इसके सिवा कोई लालच मेरे दिल में फांसी से बचे रहने का कभी नहीं आया। मुझसे ज्यादा खुशकिस्मत कौन होगा? मुझे आजकल अपने आप पर बहुत नाज है। मुझमें अब कोई ख्वाहिश बाकी नहीं है। अब तो बड़ी बेताबी से आखिरी इम्तहां का इन्तजार है। आरज़ू है कि यह और करीब हो जाए।"

इस पत्र में भगतसिंह अपने जीवन की पूरी ऊंचाई के साथ हमारे सामने आ गए हैं। उन्होंने जो कुछ किया, वह अनुपम है, पर वे उतने से ही सन्तुष्ट नहीं हैं। वे मानवता के लिए अभी और बहुत कुछ करना चाहते थे। जिन्दा रहने की ख्वाहिश भी सिर्फ इसीलिए थी, परन्तु जो कुछ होने जा रहा था उसका भी वे बड़ी बेसब्री से इन्तजार कर रहे थे। मृत्यु को इतना निकट देखकर भी वे पूरी तरह शान्त एवं प्रसन्न थे। कोई भय, कोई घबराहट उनके चेहरे पर नहीं थी। जो व्यक्ति साथियों का सन्देश लेकर आया था वही भगतसिंह का सन्देश लेकर चलने लगा तो भगतसिंह ने कहा, "उनसे कहना यारो! बातें तो बहुत हो चुकी अब रसगुल्ले तो खिला दो।" थोड़ी ही देर में रसगुल्ले आ गए। भगतसिंह ने बड़ी प्रसन्नता के साथ रसगुल्ले खाए। यह उनके जीवन का अन्तिम भोजन था।

सभी कैदी इस समय अपनी कोठरियों से बाहर थे। असिस्टेंट जेलर ने सब से अपनी अपनी जगह बन्द हो जाने को कहा। बन्द होने का समय तो शाम का होता है, अभी तो दोपहरी भी नहीं ढली थी। सभी के मन में प्रश्न उठा कि जरूर कोई खास बात है। सब ने शंका भरी निगाहों से एक-दूसरे को देखा और फिर चुपचाप अपनी-अपनी कोठरियों में चले गए। हां, खास बात तो आज ही थी। इतिहास में जो कभी नहीं हुआ था, वह होने जा रहा था। फांसी सदैव प्रातःकाल दी जाती है पर यहां तो दोपहर बाद ही तैयारियां आरम्भ हो गयी थीं। सभी नियमों-कानूनों का उल्लंघन कर ब्रिटिश सरकार ने शाम को ही फांसी देने का निर्णय कर लिया था।

लाहौर सेण्ट्रल जेल के चीफ वार्डर चतरसिंह को दोपहर बाद तीन बजे के लगभग यह सूचना दी गई कि आज शाम को भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फांसी दी जाएगी, इसलिए वह पूरी व्यवस्था कर ले। चतरसिंह मधुर स्वभाव वाला ईश्वरभक्त मनुष्य था। सुबह-शाम पाठ किया करता था। उसे जब मालूम हुआ कि भगतसिंह की जिन्दगी के कुछ ही घण्टे बाकी हैं तो वह उनके पास गया और कहने लगा, "बेटा, अब तो आखिरी वक्त आ पहुंचा है। मैं तुम्हारे बाप के बराबर हूं। मेरी एक बात मान लो।"

भगतसिंह ने हंसकर कहा, "कहिए क्या हुक्म है?" चतरसिंह ने जवाब दिया, "मेरी सिर्फ एक दर्ख्वास्त है कि अब आखिरी वक्त में तो 'वाहे गुरु' का नाम ले लो और गुरुवाणी का पाठ कर लो। यह लो गुटका तुम्हारे लिए लाया हूं।"

भगतसिंह जोर से हंस पड़े और बोले, "आपकी इच्छा पूरी करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं हो सकती थी, अगर कुछ समय पहले आप कहते। अब जबकि आखिरी वक्त आ गया है मैं परमात्मा को याद करूं तो वे कहेंगे कि यह बुजदिल है, तमाम उम्र तो इसने मुझे याद किया नहीं, अब मौत सामने नजर आने लगी है तो मुझे याद करने लगा है। इसलिए बेहतर यही होगा कि मैंने जिस तरह पहले जिन्दगी गुजारी है, उसी तरह मुझे दुनिया से जाने दीजिए। मुझ पर यह इल्जाम तो कई लोग लगाएंगे कि मैं नास्तिक था और मैंने परमात्मा में विश्वास नहीं किया लेकिन यह तो कोई न कहेगा कि भगतसिंह बुजदिल और बेईमान भी था और आखिरी वक्त मौत को सामने देखकर उसके पांव लड़खड़ाने लगे।"

नहीं, उनके पांव नहीं लड़खड़ाए। वे तो इस समय अपने सबसे बड़े दोस्त से मुलाकात कर रहे थे। प्राणनाथ मेहता उन्हें लेनिन का जो जीवनचरित्र दे गए थे, वे उसे पढ़ रहे थे। अभी

उन्होंने कुछ पृष्ठ ही पढ़े थे कि उनकी कालकोठरी का ताला खुला और जेल अधिकारी ने कहा, "सरदारजी, फांसी लगाने का हुक्म आ गया है, आप तैयार हो जाएं।"

भगतसिंह के दाहिने हाथ में पुस्तक थी। उन्होंने पुस्तक पर से बिना आंख उठाए बायां हाथ उन लोगों की ओर उठा दिया और कहा, "ठहरो, एक क्रान्तिकारी दूसरे क्रान्तिकारी से मिल रहा है।" भगतसिंह की आवाज़ में पूर्ण तेज था और पूरी प्रसन्नता थी। उनके इस प्रकार मुक्त स्वर को सुनकर जेल अधिकारी भौचक्के से रह गए। कुछ पैराग्राफ पढ़कर भगतसिंह ने पुस्तक छत की ओर उछाल दी और उचक कर खड़े हो गए और बोले, "चलो"। भगतसिंह ने अपनी कोठरी को एक बार देखा और फिर बाहर आ गए। सुखदेव और राजगुरु भी अपनी कोठरियों से बाहर आ गए थे। तीनों ने प्यार से एक-दूसरे को गले लगाया। भगतसिंह ने कहा, "हमारे हाथों में हथकड़ियां न लगाई जाएं और हमारे चेहरे कण्टोप से न ढके जाएं।" उनकी यह बात मान ली गई।

भगतसिंह बीच में थे, सुखदेव-राजगुरु दायें-बायें। क्षण भर के लिए तीनों रुके, फिर चले और चलने के साथ ही भगतसिंह ने गाना आरम्भ किया :

"दिल से निकलेगी न मर कर भी वतन की उलफत
मेरी मिट्टी से भी खुशबू-ए-वतन आएगी।"

और फिर तीनों मिलकर इसे ही गाने लगे।

वार्डर ने आगे बढ़कर फांसी घर का काला दरवाजा खोला। भीतर लाहौर का अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर नियमानुसार खड़ा था। वह इन तीनों को खुला देखकर जरा परेशान हुआ, पर जेलर ने उसे आश्वस्त कर दिया। तभी भगतसिंह उसकी ओर मुड़े और बोले, "मजिस्ट्रेट महोदय, आप भाग्यशाली हैं कि आज आप अपनी आंखों से यह देखने का अवसर पा रहे हैं कि भारत के क्रान्तिकारी किस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक अपने सर्वोच्च आदर्श के लिए मृत्यु का आलिंगन कर सकते हैं।"

भगतसिंह के स्वर में व्याप्त सच्चाई से प्रभावित हो डिप्टी कमिश्नर जैसे पानी-पानी हो गया। भगतसिंह और उनके साथी फांसी के मंच की सीढ़ियां चढ़कर ऊपर आ गए थे। उनके पैरों में न कंपकंपी थी, न लड़खड़ाहट और न चेहरों पर कोई घबराहट। तीन फन्दे लटक रहे थे। तीनों वीर उसी क्रम से उनके नीचे आ खड़े हुए, बीच में भगतसिंह, दाएं राजगुरु और बाएं सुखदेव। तीनों ने एक साथ सिंह गर्जना की "इन्कलाब जिन्दाबाद, साम्राज्यवाद मुर्दाबाद।"

तीनों ने अपना-अपना फन्दा पकड़ा और उसे चूमकर अपने ही हाथ से गले में डाल दिया। भगतसिंह ने पास खड़े जल्लाद से कहा, "कृपाकर अब इन फन्दों को आप ठीक कर लें।" जल्लाद ने कब ऐसे लोग देखे थे? कब ऐसे स्वर सुने थे? डबडबाती आंखों और कांपते हाथों से उसने फन्दे ठीक किए, नीचे आकर चरखी घुमाई, तख्ता गिरा और तीनों वीर भारत-माता को अर्पित हो गए। समय था सन्ध्या सात बज कर तैंतीस मिनट।

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार